

मोती बी ए की आत्मकथा

भाग - एक



श्री मोती बीड़

सम्पादक-श्री जगनीकृष्णारंडपाण्ड्याव



मोती बीए की आत्मकथा भाग-संक्षिप्त





आत्मकथा मोती बीए



Title: AATMKATHA MOTI BA

Author's name: MOTI BA

Editor's name: ANJANI KUMAR UPADHYAY

Published by : SELF PUBLISHED

Publisher's Address-

MOTI BA NIWAS, NANDANA WARD WEST
BARHAJ DEORIA

Printer's Details-

Faiz & Jaish Publishing Team

Nandana Pashchimi

Barhaj Deoria

U.P. 274601

Edition Details - I st Edition

ISBN: 978-93-5680-254-4

ISBN 978-93-5680-254-4



9 789356 802544 >

Copyright © Anjani Kumar Upadhyay

Email-

editorsampadanews@gmail.com

anjanikumarupadhyaya@gmail.com

editorsampada@sampadanews.in

Website

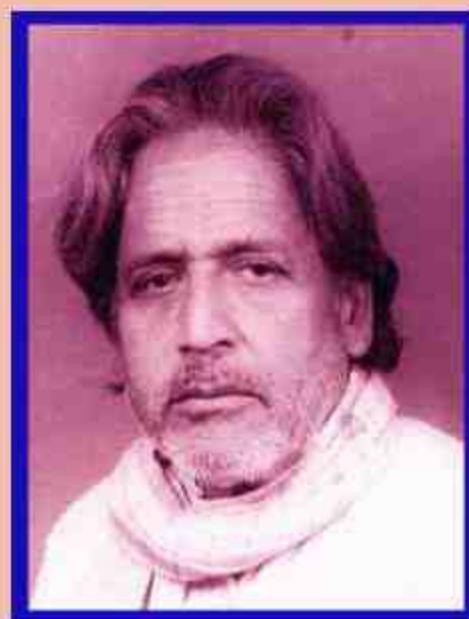
www.sampadanews24.blogspot.com

www.sampadanews.in





समर्पण



“रखना आपकी, प्रकाशन आपका, संकलन आपका”
 मैंने तो बस, ‘आपकी बातों को’ आपके
 चरणों में रख दिया है।
 पूज्य पिता श्री मोती बीए को समर्पित।
 -झंडगीकुमारउपाध्याय



आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए का जीवन परिचय

जन्मतिथि : 01 अगस्त 1919 पुण्यतिथि : 18 जनवरी 2009



जन्मस्थान : ग्राम-बरेजी, डाकघर-तेलिया कला, जिला-देवरिया (उ.प्र.)

निवास स्थान : लक्ष्मी निवास, नन्दना पश्चिम, बरहज, देवरिया (उ.प्र.)

परिवार : पिता- श्री राधकृष्ण उपाध्याय, माता-श्रीमती कौशल्या देवी, सहोदर भ्राता- श्री जगदीश नारायण मालवीय, डॉ परमानन्द उपाध्याय, बहने-सुश्री शान्ती देवी, कान्ती देवी, पत्नी-श्रीमती लक्ष्मी देवी उपाध्याय, पुत्र-जवाहर लाल उपाध्याय, भालचन्द्र उपाध्याय, अंजनी कुमार उपाध्याय, पुत्रियाँ- सुश्री उर्मिला देवी, शारदा देवी।

शिक्षा एवं शैक्षणिक उपाधियाँ : बरहज से हाई स्कूल, गोरखपुर से इंटर मीडिएट तथा वाराणसी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम. ए. (इतिहास), बी.टी. साहित्य रल।

सर्जनात्मक लेखन : 1936 से 2000 तक हिन्दी, भोजपुरी, उर्दू तथा अंग्रेजी में गीत, गजल, कविता, निबन्ध, अनुवाद, आत्मकथ्य इत्यादि प्रकाशित / अप्रकाशित कुल मिलाकर पचास से अधिक रचनाएँ।

पत्रकारिता : 1939 से 1943 तक अग्रगामी, आज, संसार, आर्यावर्त समाचार पत्रों के सम्पादकीय विभाग में मूर्धन्य पत्रकार बाबूराव विष्णु पराङ्कर तथा सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल के साथ सम्पादकीय विभाग में सहायक के रूप में कार्य।

स्वाधीनता सेनानी : 1943 में वाराणसी में चेतगंज थाना तथा सेण्ट्रल जेल में भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत नजरबन्द।

सिने गीतकार एवं कलाकार : 1944 से लेकर 1951 तक पंचोली आर्ट्स पिक्चर्स, लाहौर, फिल्मस्तान लिमिटेड, बम्बई, प्रकाश पिक्चर्स, बम्बई के गीतकार के रूप में 'नदिया के पार' (पुरानी, दिलीप कुमार, कामिनी कौशल), 'कैसे कहूँ', 'साजन', 'सिन्दूर', 'रिमझिम', 'सुभद्रा' इत्यादि अनेक फिल्मों में गीत लेखन। फिल्म 'साजन' का प्रसिद्ध गीत 'हमको तुम्हारा ही आसरा, तुम हमारे हो न हो' तथा 'नदिया के पार' के सभी गीतोंका भोजपुरी में सर्वप्रथम लेखन- 'कठवा के नह्या बनहड़े मलहवा', 'मेरे राजा हो, ले चल नदिया के पार' इत्यादि गीतों के द्वारा पिफल्मों में भोजपुरी भाषा के प्रवर्तक। पुनः 1984-85 में भोजपुरी फिल्म 'गजब भइले रामा' 'चम्पा चमेली', 'ठकुराइन' इत्यादि में गीत लेखन एवं अभिनय। कुल मिलाकर पैतीस से अधिक फिल्मों में गीत लेखन।

आकाशवाणी तथा दूरदर्शन : बम्बई, इलाहाबाद, लखनऊ, गोरखपुर से काव्य पाठ तथा अनेक स्वरचित लोक संगीतिकाओं का प्रसारण। अनेक कवि गोष्ठियों, कवि सम्मेलनों आयोजनों के माध्यम से काव्य पाठ एवं साहित्यिक रचनाओं का प्रचार प्रसार।



आत्मकथा मोती बी.ए - मोती बी.ए का जीवन परिचय



अध्यापन : 1952 से 1980 तक श्रीकृष्ण इण्टर कालेज, बरहंज में इतिहास, अंग्रेजी एवं तर्क शास्त्र के प्रवक्ता के रूप में प्रतिष्ठित। वर्ष 1978 में उत्तर प्रदेश शासन (शिक्षा विभाग) द्वारा 'आदर्श अध्यापक' पुरस्कार से सम्मानित। अध्यापन काल में विद्यार्थियों के लाभार्थ हाई स्कूल / जूनियर हाई स्कूल पोइट्री तथा अन्य अंग्रेजी कविताओं का हिन्दी में पद्यानुवाद। साहित्यिक रचनाएँ : हिन्दी कविता में तेइस प्रकाशित तथा सात अप्रकाशित कविता पुस्तकों, हिन्दीगद्य में 'इतिहास का दर्द', निबन्ध एवं आत्मकथ्य का लेखन, भोजपुरी में पाँच प्रकाशित एवं दो अप्रकाशित पुस्तकों। उर्दू में पाँच प्रकाशित तथा एक अप्रकाशित पुस्तक, अंग्रेजी में दो प्रकाशित तथा एक अप्रकाशित कविता पुस्तक तथा अंग्रेजी में शेक्सपीयर के सानेट्स तथा पाँच अन्य लम्बी अंग्रेजी कविताओं तथा कई अन्य छोटी अंग्रेजी कविताओं का हिन्दी एवं भोजपुरी में पद्यानुवाद। अब्राहम लिंकन (अंग्रेजी नाटक) का भोजपुरी में अनुवाद, कालिदास कृत 'मेघदूत' (संस्कृत) का भोजपुरी में पद्यानुवाद। इस प्रकार पचास से अधिक पुस्तकों का लेखन और अनुवाद। मोती बी.ए. ग्रन्थावली' में सम्मिलित पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ अन्य अप्रकाशित निबन्ध एवं कविताएँ अभी छपने के लिए शेष। भोजपुरी में सॉनेट एवं हाइकू विधा में लिखने वाले सर्वप्रथम रचनाकार।

सम्मान एवं पुरस्कार : दो दर्जन से अधिक सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त, जिसमें से कुछ प्रमुख हैं- उत्तर प्रदेश शासन द्वारा 'समिधा' पुस्तक के लिए राज्य साहित्यिक पुरस्कार (1973-74), उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा 'आदर्श अध्यापक' पुरस्कार (1978), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा राहुल सांस्कृत्यायन पुरस्कार (1984), हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा 'भोजपुरी रत्न' उपाधि (1992), 'श्रुतिकीर्ति' सम्मान (1997), विश्वभोजपुरी सम्मेलन, भोपाल द्वारा 'सेतु' सम्मान (1998), साहित्यअकादमी नई दिल्ली द्वारा भोजपुरी के लिए प्रथम 'भाषा सम्मान' (2001-02), 'किसलय' सम्मान (2005), 'सरयूरत्न' सम्मान (2005)

अकादमिक/साहित्यिक स्वीकृति, अभिमत एवं मान्यताएँ : देश-विदेशकी अनेक लब्धप्रतिष्ठ पत्रिकाओं में परिचय एवं रचनाएँ प्रकाशित। विभिन्न प्रयोजनों हेतु सम्पादित अनेक पुस्तकोंमें रचनाएँ सम्मिलित एवं प्रकाशित। कई विश्वविद्यालयों के भोजपुरी लोक साहित्य विषयक पाठ्यक्रम में रचनाएँ सम्मिलित। विश्वविद्यालयों में मोती बी.ए. के साहित्य पर पी.एच.डी. उपाधि हेतु कई शोध प्रबन्ध स्वीकृत। वर्ष 1999 में डॉ शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी (शान्ति निकेतन) द्वारा मोती बी.ए. की प्रतिनिधि कविताओं का सम्पादन 'आग और अनुराग' पुस्तक





आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए का जीवन परिचय



के नाम से रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा (मध्य प्रदेश) द्वारा प्रकाशित। अखिल भारतीय विक्रम परिषद काशी द्वारा वर्ष 1972 में प्रकाशित एवं आचार्य सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'तुलसी ग्रन्थावली' (द्वितीय खण्ड) के व्यवस्थापक मण्डल के सदस्य रूप में कार्य। प्रसिद्ध साहित्यकार सर्वश्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, हरिवंश राय 'बच्चन', विशम्भर 'मानव', रामबली पाण्डेय, श्याम नारायण पाण्डेय, डॉ रामचन्द्र तिवारी, डॉ प्रताप सिंह तथा कई अन्य साहित्यकारों द्वारा रचनाएँ समालोचित, प्रशंसित एवं सम्मानित। मोती बी.ए की रचनाओं के विषय में कुछ विद्वानों की सम्मतियाँ।

साहित्य अकादमी (भारत सरकार) द्वारा जारी संक्षिप्त परिचय

Born in 1919, in Bareji Village, Dist. Deoria, Uttar Pradesh, Moti B.A. is an MA, BT and Sahitya Katan. He knows Hindi, English and Urdu. He was associated with the editorial departments of *Agrami*, *Aaj Sansar* and *Aryavrat* in Benares from 1939 to 1943. In 1943 under the Indian Security Act he was put under house-arrest in Benares Central Jail. He joined the Shrikrishna Intermediate College, Barhaj, in 1952 as a lecturer and retired from there in 1980. He has more than a dozen original works in Bhojpuri and half-a-dozen books translated from English and Sanskrit into Bhojpuri. His published works include *Pratibimbini*, *Ashvamedh Yag*, *Samidha*, *Kavi aur Kavita*, *Madhu-trishna*, *Badlika*, *Ansu Dube Geet*, *Har Singar Ke Phool* (all poetry collections in Hindi); *Itihas ka Dard* (essay collection in Hindi); *Samer Ke Phool* (Geet Collections), and *Ban Ban Bole Koeliya* (folksongs) —all in Bhojpuri. Among his well-known translated works are Kalidasa's *Meghdoot* and John Drinkwater's English play, *Abraham Lincoln* in Bhojpuri. He has also published works in English and Urdu which include, *Rashke Guhar*, *Dard-e-Guhar* and *Ek Shayar; Love and Beauty* and *Beauty in Will*. Moti B.A. has received many awards including U.P. Education Department award, Rahul Sankritayan Puraskar by U.P. Hindi Sansthan, Bhojpuri Ratan Alankaran, U.P. Kavi Ratan Upadhi, Srutikriti Samman, Setu Samman and others.

Sahitya Akademi feels honoured to confer the Bhasha Samman on Sri Moti B.A. for his unique contribution to Bhojpuri language and literature.





अनुक्रम

क्रम	विवरण	पृष्ठ
01	श्री मोती बीए का जीवन परिचय.....	005
02	श्री मोती बीए के महत्वपूर्ण दस्तावेज.....	009
03	आत्मकथा, पारिवारिक पृष्ठभूमि.....	036
04	कविता की खोज में.....	050
05	खोज की उपलब्धियाँ.....	068
06	पत्रकार जीवन के अनुभव.....	074
07	उपाधियों का संघर्ष.....	094





TEL. 20557

II

Acharya Productions

3-5 Ganesh Wadi,
Sheikh Memon Street,

Bombay 2, 10th August. 1949.

Our Ref. No. A/56.

From
Moti B.A.
Andheri.

To
M/S. Acharya Productions.,
3/5 Ganesh Wadi.,
BOMBAY.2.

Dear Sir.,

I the undersigned, Moti B.A. give you in writing that the two songs viz 'Ye dumai hay mhabat ki' and 'Oairo ki galionen chup chup ke jato' were exclusively written by me and were my absolute property. I have sold the said two songs to you for Re. 500/- (Rupees five hundred only) and I have already received the said amount. I have now no claim what so ever on the said two songs. You are entirely at liberty to use the said two songs in any way what ever you prefer.

Yours faithfully.,

Moti B.A.





THE BOMBAY TALKIES, LIMITED.

MANAGING AGENTS,
HIMANSURAI INDO-INTERNATIONAL
TALKIES, LTD.

REGISTERED OFFICES:
READYMONEY MANSION
CHURCHGATE STREET.
FORT, BOMBAY, 1.

STUDIOS:
HIMANSURAI ROAD.
MALAD. (B.B.C.I.R.Y.)

TELEPHONES { OFFICE: 23554,
STUDIO: 64032.
CODES USED: BENTLEY'S
CABLES & TELEGRAMS
"TALKIES," BOMBAY
POST BOX 393

REF. NO. 9 C-F/o 260

Studios:

DATED, 7th August 1944.

Mr. Motilal Upadhyay, M.A., B.T.,
Sahityaratna,
Pancholi Art Pictures,
LAHORE.

Dear Sir,

We are in receipt of your letter
dated the 1st instant, and in reply,
we have to request you to kindly send
a few specimen of your work, for our
consideration.

Yours faithfully,

Amiya Chakrabarty
Secretary to
Mr. Amiya Chakrabarty.

SG/DAT.





Filmistan Ltd.

REGISTERED OFFICE:
11-13, ELPHINSTONE CIRCLE,
BOTAWALA BUILDING,
POST BOX 247

STUDIOS:
GHODBUUNDER ROAD,
GOREGAON (E. S. & C. LTD.)

TELEPHONES [OFFICE: 27280
STUDIO: 64312.
CABLES & TELEGRAMS:
"FILMISTAN," BOMBAY.

MONT, BOMBAY.

BY REGISTERED POST. Studios: DATED. November 12, 1946.

REF. NO. 267.

Mr. Moti, B.A.,
Song Writer,
Village Baraiji, Barhaj Bazaar,
Post Office Satraon,
District Gorakhpur - U.P.

Dear Sir:

We are in receipt of your letter dated the 6th instant - it came to our hands on the 11th - and in reply have sent you the following telegram the same day:

"YOUR LETTER OF 6TH REPORT FOR DUTY IMMEDIATELY WIRE WHEN STARTING FAILING WHICH ACTION WILL BE TAKEN AGAINST YOU UNDER TERMS OF YOUR CONTRACT SITUATION IN BOMBAY MUCH BETTER - FILMISTAN."

As you will observe from the telegram the situation in the City is getting better every day and in a few more days' time we expect everything will be restored to normalcy.

Considering the above, therefore, you are hereby asked to Please also note that your leave period has made our work suffer to a great extent and we cannot allow you to be absent any longer especially when the work of every Department in the studio goes on uninterrupted with the full complement of workers.

As we have said above, the situation in the City as well as in the adjoining disturbed areas shows distinct signs of improvement and we would, therefore, impress upon you that there is not the least cause for worry about one's safety and as such we would urge you to report for work without delay failing which we shall be reluctantly compelled to take action against you as provided for in the Agreement.



आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए के महत्वपूर्ण दस्तावेज



कार्यालय वरिष्ठ अधीक्षक केन्द्रीय कारागार वाराणसी

पत्र संख्या "३१८" / दिनांक १५-७-९६

दिनांक १५-७-९६

सेवा में । उपर जिला देवरिया विधानसभा ।
वाराणसी ।

विषय- श्री मोती लाल उपाध्याय पुत्र भ्री राधा किशन गुरु बरेजी धाना बरहज-जिला-देवरिया के कारागार में निलम्बन होने के तम्कन्य में ।

महोदय,

कृपया अपने पत्र दिनांक 25-7-96 का सदर्म ग्रहण करें, इस कारागार पर उपलब्ध अभियोगों के अनुसार श्री मोतीलाल उपाध्याय पुत्र भ्री राधा किशन गुरु बरेजी धाना बरहज जिला देवरिया का प्रयेश एवं सुकित रजिस्टर ४ रजिस्टर ०१ ५ में दिनांक 21-5-43 को कारागार में निलम्ब होना नहीं पाया जाता है तथा सुकित रजिस्टर ४ रजिस्टर ०१ ७ में दिनांक 19-6-43 को एक्सी मोती लाल उपाध्याय को पारा १२९ डॉ. आई.आर के अन्तर्गत दिनांक 5-6-43 को दो माह की सजा दिये जाने एवं आदेश तंत्र पर अन्य दिनांक 17-6-43 के द्वारा छोड़े जाने का उल्लेख है सुकित रजिस्टर में पिला का नाम एवं पता अंकित नहीं है

A/3
३१८/७१
से० १८०.

पृ. ३०८. १८०. १८०. ।

(१)
A/3
३१८/७१

धाराद्वारा द्वारा

कार्यालय सुनिश्चित
ठाकुर ब्रह्म लाल
उपरिकृत
निष्ठ लाल राज भर्पुरा
कालांड बरहमा

मनदीय
मुरिल लल अ. १८०.
वाराणसी





आदर्श अध्यापक के रूप में राज्य सरकार द्वारा पुरस्कृत

मोती बी. ए. का अभिनन्दन

मोती बी० ए० तुमको प्रणाम ।

हे ! भोजपुरी के कवि ललाम ॥

किसके गीतों से सुरभित हो बहती रहती नित "पुरबेथा ?

किसकी वाणी से गंज रही प्रबू के पर की अंगनेया ?

कविता की धानी चूनर में टंक गया मुनहरा एक नाम ॥ मोती बी० ए०.....

काशी की मस्ती से सीधा तुमने गीतों का महशान

"बरहज" की धरती पर जनमें जैसे प्राची में अङ्गुमान ।

सरबू की लहरें कहती हैं कल्लोलित भवनि में सुबह शाम ॥ मोती बी० ए०.....

यह मिनमध चौदही मधु-चनु की, मंगलमय हो, कल्याणी हो ।

शुभ श्रवं शरदों तक आप जियें, करतो छाया ब्रह्माणी हो ॥

"महुआ बारी" से पीते हो क्या जीवन का लबरेज जाम ? मोती बी० ए०.....

लाला हरप्रसाद इंटर कालेज

बरहज (देवरिया)

फिल्म २५-१-८० ई०

अभिका प्रसाद दुबे
जिला विद्यालय निरीक्षक
देवरिया

पंकज प्रिंटिंग प्रेस एवं स्टेशनरी, बरहज (देवरिया)



आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए के महत्वपूर्ण दस्तावेज



प्रो. के. सच्चिदानन्दन

मणि

Prof. K. Satchidanandan

Secretary

SA.61/02/TPW/8SW/

साहित्य अकादमी

राबिन्द्र शरण, 35 फरोज़शाह रोड, नई दिल्ली-110 001
फ़ाक्स: साहित्यकार 338 7064, 338 6626
फ़ैक्स: 091-11-338 2428
ई-मेल: secy@ndb.vsnl.net.in

Sahitya Akademi

(National Academy of Letters)

Rabindra Shrawan, 35 Farozeshah Road, New Delhi-110 001
Chair: Sahityakar Phone: 338 7064, 338 6626
Fax: 091-11-338 2428
E-Mail: secy@ndb.vsnl.net.in
Website: http://www.sahitya-akademi.org

4 September 2002

Dear Friend,

It was unfortunate that you could not attend the Award presentation programme. We missed you badly on this occasion. Your representative, however, received the Award on your behalf.

I have pleasure in sending herewith a few snaps taken on this occasion along with five copies of the citation brochure\$. Kindly acknowledge receipt.

With kind regards,

Yours sincerely,

(K. Satchidanandan)

Sri Moti B.A.
Deoria (U.P.)

Encl. : as above



आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए के महत्वपूर्ण दस्तावेज



Messrs. Prefulla Pictures,
KOLHAPUR - BOMBAY.

Bombay,
19th July 1945.

Dear Sirs,

I have written and supplied to you the following songs :-

- (1). Gokulice Krishna mitne Madel Gaye.
- (2). Charo or Andhere.
- (3). AJ sei Sas Jo Mahi Ann.

as per copies attached herewith. I hereby agree to sell to you for the sum of Rs. 750/- (Rupees seven hundred fifty only) the entire rights of ownership and copy-right of the above songs, including the rights required for picturising and recording them in your film 'SUBHADRA' or any other film as may be found convenient to you and for issuing gramophone records of the same, as may be sung by any artiste or to sing or play the same on Radio and such other reproductions electrical or otherwise, and also for printing the same in the booklets or any other publication or to translate or adapt the same in any language of the world. You are also at full liberty to change the wordings delete or add any portions as may be found convenient to you. I further agree that I will not claim any other remuneration, share or royalty towards the copy-rights of these songs or their publication in book-lets, Radio, gramophone records, etc., besides the above sale price.

2. I warrant that all these songs are my original writing that I have not infringed in writing and supplying the above mentioned songs to you. That I will not thereafter and that I indemnify the Company in respect of all damages and costs recoverable against it in any action on the ground that the writing or production or publishing of the said songs or any part thereof is an infringement of copy-rights in any other work.

3. I further agree not to give any of these songs or any portions thereof to any one else for any purpose directly or indirectly as I have already sold all my rights concerning the same to you.

4. That in case you desire to purchase copy-rights of any other songs written by me for 'SUBHADRA' within next six months I agree to sell the same at the rate of Rs. 250/- (Rupees two hundred and fifty only) per song on the same terms and conditions.

Confirmed the above,
For Prefulla Pictures,

(Motilal Upadhyaya)
PROPRIETOR.

Yours faithfully,

Motilal Upadhyaya,
MOTILAL UPADHYAYA
(MOTI B.A.)



आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए के महत्वपूर्ण दस्तावेज



Filmistan Limited.

REGISTERED OFFICE : 11-13, ELEPHINSTONE CIRCLE,

BOTAWALLA BUILDING, POST BOX 247.

STUDIOS : GHODBUNDER ROAD, GOREGAON (E.S.I.C. L.H.Y.)

TELEPHONES { OFFICE : 27988.
STUDIO : 64212.

CABLES & TELEGRAMS,
"FILM-STAN" BOMBAY.

REF. NO. 1522

BOMBAY. 17th July 1947

Under Certificate of Posting.

Moti, B.A., Esq.,
Song Writer,
c/o., NAT DUNIYA,
WARDHA, C.P.

Dear Sir,

We are in receipt of your letter dated 9th instant and in reply have to inform you that as you failed to report for duty on the expiry of 10 days leave granted to you from 2nd October 1946 your services were terminated by the Company with effect from the above date.

If, however, you desire to rejoin the Company you should come to Bombay, at your expense, and discuss the matter with us as arrangement like this cannot be finalised by correspondence.

You're faithfully,
for Filmistan Limited,
Murshed
Managing Director

Lew



आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए के महत्वपूर्ण दस्तावेज



ARVIND & ANAND
MOTION PICTURE PRODUCERS
BOMBAY.

Dated
31.8. January 1918

Assistant Director

Dear Sir,

This is to inform you that you were signed for working in production of our "KHITTI", and as it is finished, your services will terminate on and from date.....
which please note.

Yours faithfully,
FOR ARVIND AND ANAND.

H. D. Anand
M. S. A. 1918.

INDIAN POSTS AND TELEGRAPHS DEPARTMENT. 2 C.

Copy NOTICE.

This form must accompany any inquiry made respecting this telegram.

Charges to pay

Rs. As.

STAMP Stamp.

Name and address of Despatcher

Date.

Hour.

Minutes.

Station or Office where transmitted

Words

TO

Bombay

Word per word

S H 30 M.

Mete Bachchan at Polytechnic
Kurla.

= Perfect immediately with
Songs of Sandesh

= In Conclusion

N.B. The name of the Sender, if telegraphed, is written after the stamp.





Camp, Vishnu Baug, Shenviwadi, Kandewadi,
Bombay 4.

Phone : 385



Pratap Pictures

KOLHAPUR

21st July 1945.

Motilal Upadhyaya, M.A., B.T.,
Village BARAJI,
Post: SATRAON,
Dist. Gorakhpur.

My dear Mr. Moti,

I am enclosing herewith a signed copy
of your agreement and trust that you will find
the same in order.

I do not take more time as I do wish you
to make use of your every moment to remove the
feelings of homesickness.

Should we expect more poetry of 'Bahut Dino
Ke Bad Milan' from you ?

With best regards,

Sincerely yours,

R.K. Chinchlikar
R. K. Chinchlikar.



आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए के महत्वपूर्ण दस्तावेज



OFFICE NOTE.

FILMISTAN LIMITED.

BOMBAY.

Mr. Moti,

Mr. Mukerji

Our Managing Director
wishes to see you at our
studios tomorrow at 11 A.M.
You are therefore requested
to please make it convenient
and call on him tomorrow
without fail.

Production Secretary.

S. L. M.

9/3/46

Mr. Moti,
Anchored.
no.

Filmistan Limited.

MAINTAINING OFFICE: 618, ELEPHANTINE CIRCLE,

BOTKARLA BUILDING, FORT, BOX 242.

STUDIO: GHATEYVADA ROAD, GOREGAON (T.M.W.A.T.H.Y.)

TELEPHONE: OFFICE 07888
STUDIOS 44122.

CABLES & TELEGRAMS:
"FILMISTAN" BOMBAY.

Ref. No.

Studios: BOMBAY. December 27, 1946.

Dear Mr. Moti,

We are sorry to learn that you
have been ill. We trust you have
recovered by now and are fit to attend
to your work.

Mr. Mukerji wishes to see you
urgently and I shall be glad if you
will please make it convenient to
come to the studio tomorrow morning.
Please reply per telex.

Yours sincerely,

D. L. M.

Mr. Moti,
Kurla Road,
Anchored.

आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए के महत्वपूर्ण दस्तावेज



INDIAN POSTS AND TELEGRAPH DEPARTMENT.

Date _____	Order _____	No. _____
Post Office _____		
By _____		
Amount in Rs. (Amount in Grammes)		
Bomby 11/3/1947		
TO <u>Motilal Ganguly</u> <u>Baraiji Patraon Bhadra</u> <u>Resavaiji G. S. Bahadur Deo</u> <u>50/-</u> <u>Wednesday</u> <u>full a</u> <u>settlement of your claim balance</u> <u>50/-</u> <u>Hospitality Canteen both</u> <u>House charges & filmation</u>		

48 C.

TELEGRAPH DEPARTMENT.

X LF	2	20.
Mr. <u>ca</u>		
Bomby 20 11/3 1947		
<u>Note</u> <u>6d song waiter</u> <u>Baraiji Patraon Bhadra</u> <u>your letter 10th September</u> <u>improving no cause</u> <u>for soot please report</u> <u>immediate wire departure</u> <u>fit meghan</u>		

20.



आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए के महत्वपूर्ण दस्तावेज



Tele. 86263, 86313

Grama: "SCREENTALK"

PRAKASH
KURLA ROAD,



PICTURES
ANDHERI, (Bombay.)

31st May 46.

Mr. Motilal Upadhyaya,
Kirtikarwadi,
DADAR.

Dear Sir,

With reference to the letter passed between us re: your services with us, this is to inform you that we are not exercising our option of continuing your services and as such your services will terminate with us on the 30th June 1946.

Yours faithfully,
Prakash Pictures,

H. Gan
Manager.

Chief Agents: EVERGREEN PICTURES, 15, New Queen's Road, BOMBAY.
11, Esplanade Row, East CALCUTTA :: 51, Gandhi Nagar, BANGALORE City.
Northern India Agents: DESAI & COMPANY, The Mall, LAHORE & Chandani Chowk, DELHI.



आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए के महत्वपूर्ण दस्तावेज



parties shall sue the other for any breach not referable to arbitration, of this agreement without having first referred the question or questions in dispute to the District Inspector/Regional Inspectress and allowed him/her reasonable time not exceeding two months to settle the dispute.

16 If the teacher is not in the station at the time when any notice ought to be given to him/her in accordance with and of the provisions of this agreement such notice may be sent to him/her by registered post to his/her address, if known and a notice so posted (Whether ever delivered or not) shall have effect from the day when it would have reached him/her in the ordinary course of the post. If the teacher leaves the station without leaving any address a resolution or decision of the committee passed not less than fourteen days after the date when notice would have been given to him/her if he/she had been in the station shall be effective whether the teacher gets notice of it or not.

In witness whereof the parties hereto have hereunto set their hands the day and year above written.

Signed on behalf of the committee by.....
under the authority of resolution of the committee as passed on.....
in the presence of—

Witness (1).....*Durgabai Vithanwadi Singh*.....

Address.....*Vill. Jainagar P.O. Baraj Bagan Deonar*

Witness (2).....*Sanket D. Jivani*.....

Address.....*Graam Hevali Baraj Bagan Deonar*

Signed by the teacher.....*Haji Lal Upadhyay*.....

in the presence of

Witness (1).....*Kapil Dev*.....

Address.....*S.K. High Secondary School, Baraj,*

Witness (2).....*Ramchandra*.....

Address.....*Mazarat M. T. P. 129(2n)*

*N.B.—(i) In the case of School having winter vacations "September" and "November" should be substituted for "January" and "March" respectively in clause 12.

A stamp duty of the requisite value shall have to be paid at the time of execution of this document.

Set dby:—Mahipur Branch Press, Saharanpur.





UTTAR PRADESH

I.R.



(For Teachers of recognized A. V. B. G. & Girls Schools and Colleges only)

Revised Agreement referred to in Paragraph 358 (2) of the Educational Code of U. P.

AN AGREEMENT made this Seventh day of January
19.54 between 1/1/01 Lakshmi Devi 10.00/- saline
(hereinafter called the teacher) of the one part and the managing committee of
the S. K. Inter college/school (hereinafter called the committee) of the other
part.

The committee hereby agrees to employ the teacher and the teacher hereby
agrees to serve as Lecturer in the said college/school, on the following
terms.

1. The Teacher's employment shall begin from the Seventh day
of July 19.52. He She shall be employed in the first instance for one
year on probation and shall be paid a monthly salary of Rs. 120/-. The period
of probation shall, in no case exceed one year except where the teacher has not
qualified himself/herself, for permanent appointment in accordance with the rules in
the Educational Code. Where a teacher has not so qualified himself/herself, his/her
period of probation may be extended by a further period of one year. If at the end
of the period of two years the teacher has not qualified himself/herself, his/her appoint-
ment shall there upon terminate unless its continuance shall have been sanctioned
by the Inspector/Inspectress.

2. If confirmed in his/her appointment at the end of his/her period of
probations the teacher shall be employed on a monthly salary of Rs. 150/-
in the scale 1.50 - 10 - 19.0 - 15 - 250

3. The said monthly salary is due on the fist day of the month following that
for which it is earned and the committee shall pay it to the teacher not later than
the last day on which the fees must be realized in accordance with para 109 of the
Educational Code & the salaries shall be paid by cheque on a recognized bank where
one exists. In case the salary is not paid by cheque for want of a recognized bank it
will be paid in cash. The teacher shall on receiving the salary either by cheque or
Bank draft (if necessary) in token of such

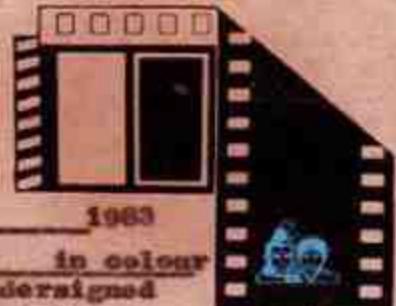




RAJESH FILMS COMBINE

136, ANHITAL COLONY, NARIMAN POINT, BOMBAY 400 021

PHONE: 240000



MOTION
PICTURE
PRODUCERS

Dear Sirs,

Date 1963

Re: Picture

Tentatively titled

in colour

With reference to the personal discussions the undersigned had with you we have the pleasure to confirm your appointment as Lyricist of our above referred picture tentatively titled and we hereby put on record the following terms and conditions agreed by and between us:-

- 1) That you have agreed to give your services as Lyricist for our picture tentatively titled " in colour and the performance of your such duties shall be executed by you according to the requirements of our Director and producer to whom you will co-operate in all respects. It is further agreed by and between us that we shall have the option to keep any other suitable title of our above referred picture and you will have no objection whatsoever to the same.
- 2) That you will give your such services till our above said picture is completed censored and made ready for commercial exhibition all over.
- 3) That in full consideration of your above said services, we agree to pay you a remuneration of Rs. 1000/- (Rupees One Thousand/-) which will be paid to you as under
 - a) Rs. 500/- on signing of this agreement.
 - b) Rs. 250/- in Instalments according to the progress of the above said picture.
 - c) Rs. 250/- (Rupees Two Hundred and Fifty/-) Total
- 4) That in case we require your services even after the censors of the said picture due to censors polishing up the said picture if required, you have agreed to and undertake for rendering such services without any additional remuneration other than provided above.
- 5) That we shall have full right to terminate this agreement on finding that you are not performing your duties to the satisfaction of our Director and Producer.
- 6) That you shall be responsible for the payment of Income Tax or any other taxes on remuneration paid to you.
- 7) That we agree to give proper place to your name in the publicity of our above said picture that shall be done by us.
- 8) That all other rules and regulations pertaining to this agreement, now prevailing in the Film Industry shall be observed and shall be binding on both of us.

Please confirm the above
Thanking you,

Yours faithfully
FOR: RAJESH FILM COMBINE

I confirm the above in to

P.W.P.

Dated





Filmistan Ltd.

REGISTERED OFFICE:
1119, ELGINSTONE CIRCLE,
ROTAWALA BUILDING
POST BOX 247
MUMBAI, INDIA.

STUDIOS:
GHOORUNDER ROAD,
CORLEGON (IN K.C.L.V.Y.S)

TELEPHONES (OFFICE: STONE
STUDIO: 34912
CABLES & TELEGRAMS:
"FILMISTAN", BOMBAY.

REF. NO. 1824

Studio dated August 28, 1946.

Mr. Moti, B.E.,
Songwriter,
Siddi Manohar, Belgram road,
Mumbai, INDIA.

Dear Sir,

With reference to the interview you had today with the Controller of Productions, we hereby place on record the arrangements arrived at between yourself and the Company in regard to your appointment as an official in our Company on the following terms and conditions:

1. You shall be on probation for one year with effect from the 1st of August 1946 as a Story, Dialogue and Songs writer on a salary of Rs.400/- per month.
2. The Company will have the option to renew your service for a further period of two years after the expiry of the probationary period, from year to year with an annual increment of Rs.100/- in your salary on each renewal.
3. You shall not be entitled to receive any additional remuneration for the songs you have already composed for the productions of the Company.
4. During the period of your service with the Company you shall not work for any other producing Company.

In the form of the service agreement embodying all that is being set ready shortly, and you agree to sign it as soon as it is given to you.

You're faithfully,
For FILMISTAN, LTD.,

Munshi
Managing Director.





ARVIND & ANAND

MOTION PICTURE PRODUCERS

BOMBAY.

Dated. 26th Sept. 47

Mr. Moti(B.A.) M.A.B.T. (Santosh Ratna)
26th September 47
B.M.C.

Dear sir,

We have the pleasure in hereby appointing you in our concern, on the following terms and conditions:-

1. You agree to work with us as an Assistant for our production .
2. You will be paid a monthly salary of Rs.300/- (Rupees Three hundred only) with effects from the 15th September 47.
3. You agree to abide by the rules and regulations of our concern.

Kindly confirm.

Yours faithfully,
FOR ARVIND & ANAND

P.L. SANTOSHI.

I confirm.



आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए के महत्वपूर्ण दस्तावेज



R.P. Pandey, M.A., D.Litt.

Department of History.

Benedict Hindu Seminary

2. 3. 43

It is really a great pleasure to testify to the ability and character of Smt. Moti Lal Upadhyaya M.A. He was my student for three years in his B. and M.A. classes and I found him as one of the best scholars of his group. He always impressed me as an intelligent, hardworking and sincere student. His knowledge of history is very thorough and he can produce first class work if he gets proper facilities. Mr. Upadhyaya possesses good expression and writes a coulterful in both in English & Hindi. He was to be a successful teacher in High School's and Universities.

Smt. Upadhyaya is a young man of smart habits and polished manners which bears an excellent character. From my close contact with him I can say with confidence that he can discharge with credit any work of responsibility entrusted to him. I wish him every success in life.

R.P. Pandey.





BENARES HINDU UNIVERSITY
Central Hindu College

Department of English.

10-3-1943.

Mr. Moti Lal Upadhyaya was my student when he was preparing for the B.A. degree examination. He was a very good student. His class work reached a high degree of excellence; and he showed marked aptitude for original work as a writer of Hindi poetry. Mr. Upadhyaya's scholastic career should be considered brilliant, ~~considered~~ since he had to struggle against adverse circumstances. I am told that his subsequent career has been quite creditable. He has many qualities that should make him a good teacher, if he is given an opportunity to get trained.

Mr. Upadhyaya has charming manners, and his character is very good.

C. Narayana Menon





CENTRAL HINDU COLLEGE
BENARES HINDU UNIVERSITY

Department of History

10 - 3 - 43

I know Mr. Moti Lal Upadhyaya will well. He passed his M.A. examination in 1941 and got a good second division. He has shown good industry and intelligence in his studies. He did his class work regularly and satisfactorily. He possesses very good character and has very pleasing manners. He has a well developed sense of discipline and duty. He has in him the making of an able teacher. All his professors speak well of him. I am sure he will show ability and intelligence if he get a good chance.

S.N. Pantarajan
M.A. (Oxon.)
Head of the History Department





St. Moti Lāl Upadhyā, M.A. has served under me in the 'AJ' and 'Sansar'. I know him to be a commiscerations and paintaking youngman His entry into journalism was done to his poverty and he has struggled hard, might and day, to overcome it. He deserves a helping hand from any one who can.

As an instance of his poverty I may mention that while preparing for his M.A. examination, he used to work at night daily for six hours, in the 'AJ'. I wish him success in his other enterprises.

sd. B.V. Pararkar,
25-7-43.

ATTESTED:

Brijchand Singh
(B.K.SINGH) J.P.C.,
Dy.P.E.O. Salempur.

*confared
10/1/43
19/1/2*





दत्त रेखा २०८

श्री

दत्त रेखा २०८

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

संस्कृत
हिन्दी
उत्तराधिकारी
सम्मेलन
प्रयाग



साहित्यरत्न का उपाधि-पत्र

—तिथि—

हिन्दी-विश्वविद्यालय की संवत् १९५८ विक्रमाब्द की उत्तमा परीक्षा में
भीषुत पै. राधाकृष्ण उपाध्याय
भीषुत भासीत्तालक उपाध्याय केन्द्र कार्यप्रौदेशिक अधिकारी, से
हिन्दी साहित्य विषय में डॉक्टरेचर
अतएव हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन सर्वे
साहित्यरत्न

नाम की उपाधि और उसके प्रमाण में यह उपाधि-पत्र प्रदान करता है।

विशेष योग्यता



पैसांड १००
प्राप्तांड ८००

१० मानवज्ञान विभाग सम्मेलन के सम्बान्धित

१० रामप्रभाद विषयी विभाग मन्त्री

१० द्वारोकर उमे परीक्षा मन्त्री

मिति सोम

२४ संवत् २०८



आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए के महत्वपूर्ण दस्तावेज



BENARES HINDU UNIVERSITY

TEACHERS' TRAINING COLLEGE, BENARES.

This is to certify that... *Moti Lal Upadhyaya*
studied at this College during the session 1943-44.

He/She studied Educational Theory and his/her work in it was *good*.

During the year he/she taught the following school subjects and his/her work in them was as follows :—

1. English
2. Mathematics
3. History
4. Geography
5. Science
6. Hindi or Urdu
7. Sanskrit or Persian
8. Domestic Science.
9. *Handicrafts*

Pretty good

Good

Very good

Fair

He/She showed interest in the following extra-curricular activities :—

1. Physical Instruction in which he/she was classed as... *Good*
2. Organised Games in which he/she was classed as... *Good*
3. Scouting in which he/she was classed as... *Good*
4. Music or Drama in which he/she was classed as...
- 5.

His/Her conduct was... *Good* and to the best of my knowledge, he/she bears a good moral character.

General Remarks. A confident and resourceful teacher.

He possesses a genuine literary taste and has the gift of imparting it to others by means of his poems and writings.

Result of B. T. Examination, B.H.U. 1944.

Theory *I*

Practice *II*

Special Certificate in *M.M.*

H. L. Makhani

Principal,
Teachers' Training College, Benares.

Note—(i) The opinions are based on work done during the year and not on the results of the B. T. Examination.





BENARES HINDU UNIVERSITY,

Central Hindu College,

No. C.

Dated 17th Feb., 1943.

Certified that Mr. Moti Lal Upadhyaya
 Son of Pandit Radha Krishna Upadhyaya.....
 studied in this institution from 1936 to 1941
 in B.A. & M.A. Class es, his optional subjects being
 in B.A. Economics and History and in
 M.A. History.....
 He passed the M.A. examination in 1941, and was placed
 in the Second division. His conduct and behaviour in the College
 were satisfactory.

Motilal
 M.A., Ph.D.
 Principal.





THE
HINDUSTAN SCOUT ASSOCIATION, U. P.
 HEADQUARTERS: ALLAHABAD



CERTIFICATE OF TRAINING



This is to certify that *Moti Lal Upadhyaya*
 of*Training College, Benaras*..... attended a training class for Scoutmasters at*Training College Compound*.....
 from*12th March*..... to*21st March, 1944*..... The work that he did and the scouting ability he showed were
 ranked by the Camp Officer as being of *Good* quality. He is competent to start a unit and after
 three months' approved service with it or with a unit recognised by the Hindustan Scout Association he will be granted a Scoutmaster's
 warrant by the Executive Head of the Association.

Bharat Scouts & Guides

Banarsi Division

Dated 22.3.1944.

Punjab Central Choukri
 Camp Director

Utkshit Press Allahabad.



आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए के महत्वपूर्ण दस्तावेज



This is to certify that Pt. Moti Lal Upadhyaya, son of Pt. Radha Krishna Upadhyaya, passed the High School Exam. from this college in the year 1934. His date of birth according to our Scholars Register is 15th August 1910.

C.P.Tiwari
PRINCIPAL
K.G. INTER COLLEGE
BATHAJ.

Attested true Copy
S. Chaudhary
A.O. 1952
Medical Officer
Wazir Hospital
Barauni (Deoria)

SEAL.

MANAGER
SRI KRISHNA HIGHER SECONDARY
SCHOOL BATHAJ
(DEORIA) U.P.

8th January, 1953.

Sri Moti Lal Upadhyaya, M.A., B.T. Sahitya Ratna who has been serving this college as a lecturer from July, 1952 is allowed to stand as a candidate for the post of Assistant Supervisor in Hindi teaching Ministry of Home Affairs. His case is forwarded with strong recommendation.

H. Lala

Manager
Sri Krishna Higher Secondary School
Bathaj, Deoria.





इस्ती पूर्व छठवीं शताब्दी में हमारे गांव की धरती और आसमान मल्ल गणराज्य के अधिकार में थे। हम लोग अंग्रेजों की सत्ता की समाप्ति के पूर्व तक मझौली राज्य की प्रजा थे। लगान का एक भाग मझौली राज्य को और शेष भाग अंग्रेजी राज्य को देते रहे। अब हम लोग भारतीय गणतंत्र के अधिकारी हैं और हमारे गांव का नाम बरेजी आबगीर हो गया है। कृषि योग्य भूमि बहुत कम है, पानी का हिस्सा अधिक है। इसीलिए बरेजी का नाम आबगीर अर्थात् पानीदार विशेषण से युक्त हो गया है। इसके पास भूमि कम, पानी अधिक है।

मेरा गांव बरेजी पूर्वी उ.प्र. के देवरिया जिले में बरहज-सलेमपुर रोड पर बट्ठा चौराहे से पहले स्थित है। बरेजी बहुत छोटा गांव है। कुल मुश्किल से 60-70 घर होंगे। यजुर्वेदी (मालवीय) ब्राह्मणों की यहां प्रधानता है। सरयूपारीण ब्राह्मणों के भी कुछ घर हैं। यादवों, आभीरों और इतर जाति के श्रमिक वर्ग से इस गांव में चहल-पहल रहती है। यजुर्वेदी ब्राह्मणों का एक मण्डल ही आस-पास चार-पांच गांवों में बसा हुआ है। जिनके केन्द्र में बरेजी स्थित है। मीना गढ़वा, बढ़ौना, देऊबारी, बरेजी और अण्डला गांव थोड़ी थोड़ी दूर के फासले पर स्थित हैं। मालूम होता है इन गांवों के पूर्वज एक ही रहे होंगे जिनकी सन्तान उपरोक्त चार-पांच गांवों में फूल-फल कर बिखर गयी है। इन सभी गांवों में पट्टीदारी है, भात-पानी है। ये लोग एक दूसरे को काका, चाचा, भाई, बाबा, ईया, काकी, चाची आदि कहते हैं। मामा, मामी, नाना, नानी इनके पारस्परिक सम्बन्धों में नहीं हैं।

गांव के पूरब धान की क्यारियाँ हैं। दो एक बगीचे हैं जिनमें आम और महुआ के पेड़ों की प्रधानता है। मेरे घर के पास से ही बाग का सिलसिला शुरू होता है जिसको पूरब-दक्षिण तरफ नौरंगा कहते हैं और पूरब-उत्तर तरफ महुआबारी। कविता से प्रथमपरिचय का चैतन्यानन्द मुझको इसी नौरंगा और महुआबारी में प्राप्त हुआ था। आम और महुआ के प्रति मेरे मन में आकर्षण इसी महुआबारी और नौरंगा में उत्पन्न हुआ। मेरे बचपन ने महुआबारी और नौरंगा की बहार जी भर कर लूटी।

आज मुझको महुआबारी और नौरंगा बहुत याद आ रहे हैं। कितने सुन्दर नाम दो महुआ सखियों के आज भी मेरे मन में बांसुरी बजा रहे हैं। वे नाम हैं 'रहिलिया' और 'लवंगिया'। 'रहिलिया' दिवंगत हो गयी दुर्घटनाग्रस्त होकर एक आंधी में। मगर लवंगिया अभी जीवित है। ये दोनों सखियां लपसी बनाने की कला में बड़ी निपुण थीं। लपसी में ये अपने प्राणों का रस डाल देती थीं। लवंगिया बड़ी खूबसूरत है। दिन रात गाती है। उसके फल हमेशा झरते रहते हैं। क्या ये राधा के विभिन्न रूप तो नहीं हैं? इससे मेरा विषोह हुए कई दशक बीत गए हैं किन्तु अब तो वह मेरे प्राणों में ही बस गयी है। मेरी मधु साधों के साथ साथ 'रहिलिया' और 'लवंगिया' भी अमर हो गयी हैं।

दिन भर की थकान, भागदौड़, उलझनों और हैरानियों के बीच उत्पन्न निराशा को





हृदय से विपकाए रात की नीरवता में सोने का उपक्रम करने लगा। कविताएं टीशने लगी। कवि धिक्कारने लगा। पलके नींदके बोझ को सम्भाल न सकी। उन्होंने आत्मसमर्पण करदिया। मानव जगत में एक सुनहला स्वप्न साकार हो उठा। 57 वर्ष पुराना जब मेरा जन्म हुआ था। मेरा प्यारा छोटा सा गांव। चित्रों की झाँकियां सजने लगे। मेरी आत्मा मेरे उस में भ्रमण करने। स्पष्ट ध्वनि एक दूर को आवाज बांसुरी के एक सुदूर सुरीली तान अमृत सिम बंद करने लगे पड़े शरीर की तरह तरह से दुलार होने लगा नेपथ्य कोई समाज को लीजिए आप भी सुनिए जीवन धाटी में सजी मनोहर चित्रावली को देखिए।

मौना गांव के साथ गढ़वा शब्द संयुक्त हैं। संभवत यही से उपरोक्त पांचों गांव का विस्तार हुआ होगा। गढ़वा शब्द से मौना गांव राजप्रभुता से संबंधित प्रतीत की होता है। यहां के पूर्व-पितामह निश्चय हीखण्डाधिपति, भूमिपति या छोटे-बड़े किसी स्तर के राजा रहे होंगे। मौना-गढ़वा के टीले में कोई छिपा इतिहास सूर्य की रोशनी में रोज चमकता है और सितारों की रोशनी में मुस्कुराता है। बरेजी इसी गांव का एक अंश है। मेरे पितामह मौना गढ़वा के नाम से ही भाव विस्वल हो जाया करते थे। वे प्राय मौना गांव जाकर उसके प्रत्येक कण के प्रति कृतज्ञताका भाव व्यक्त किया करते थे। मौन गढ़वा के निवासियों में उचित प्राचीन भव्यता की निशानी पाई जाती है। बढ़ौना भी संप्रभुता का अधिकार प्रतीत होता है। इस गांव के उपाध्याय वंश का एक परिवार राजघराना जैसा लगता है। यहां का एक-एक व्यक्ति कल-छल और दबंग होता है और राजनीति में पट्ठ होता है।

हमारे गांव के लोग भावना और बढ़ाना को श्रद्धा और सम्मान का कर आज भी अदा करते हैं यद्यपि बढ़ौना और बरेजी में शक्ति का प्रदर्शन भी प्रायः होता रहता है। कसिली नाले के दोनों तरफ ग्रामीण हथियार से लैस होकर कदम छोड़ोवल, लाठी भजौवल और पोंछीअवल के दिलचस्प नजारे प्रायः गुदगुदी और सनसनाहट पैदा करते रहते हैं।

मौना गढ़वा और बढ़ौना के बाद बरेजी, देऊबारी और अण्डला सामान्य स्थिति के गांव हैं। शिक्षा और अन्यान्य उपायों से यहां के लोग जीविकोपार्जन करते हैं। अच्छे कुश्तीकार भी हैं। जमीन भी जोतने योग्य पर्याप्त है। नौकरी कमाऊ पढ़ाई लिखाई के कारण बरेजी और अंडीला में कुछ बड़े ऊंचे ऊंचे तबके के सरकारी, गैर सरकारी नौकर हो गए हैं। बरेजी डॉक्टर, वैद्य, इंजीनियर, प्राचार्य, प्रवक्ता, वकील-मुख्तार, शिक्षक-शिक्षा का गांव है। इस गांव में कवि भी बहुत हैं मगर खूबी है कि इनमें से कोई भी अपने को कवि स्वीकार नहीं करता।

हमारे गांव में दो विश्वनाथ हैं। दोनों उपाध्याय हैं। एक विश्वनाथ अधिकारी उपनाम से प्रसिद्ध है, दूसरे विश्वनाथ बंबइया के नाम से पुकारे जाते हैं। अधिकारी गांव में ही





रहते हैं खेती बारी किसानी परिवार का पालन इनका धंधा है। स्कूल दर्जा एक तक (प्राइमरी)। संगीत के प्रभाव से ये कविता की ओर झुक इनके कविता की बानगी देखिए-

कौन बजाए, कौन बजाए, कौन बजाए रे,
बीना, झनन झनन झन कौन बजाए रे,
किरण बजाए, पवन सुनाए, लहर उठाए रे,
बीना झनन झनन झन, झनन झनन झन,
कौन बजाए रे ।

दूसरे विश्वनाथ उपाध्याय बहुत ही अच्छे लेखक, कवि और विद्वान हो सकते थे किंतु समय उनके मार्ग में बाधक बन गया। अब तो वे सेटल्ड प्रतीत होते हैं किंतु कविता की ओर से मुड़ चुके हैं। जब मैं भी उनके साथ ही मुंबई में था, उन्होंने एक बड़ीही सरस और सजीव कविता 'बम्बई की झांकी' लिखी थी-

'बम्बई बहुत गुलजार शहर है भारत का पेरिस-लंदन।' बम्बई के लोकल ट्रेनों में प्रेमालाप का दृश्य देखकर कवि से नहीं रहा गया-

राधा रुठी एक ओर खड़ी श्री कृष्ण कर रहे पग वन्दन ! बम्बई के आंतरिक सौंदर्य को निखार कर दिखलाने वाला विश्वनाथ जी का यह एक ही काव्य परम आनंद की सुष्टि करता है। बरेजी में रहने के कारण ये भी प्रचार से दूर अत्यंत दूर हो गए।

नौरंगा आमों का बाग है। इसका सिलसिला मेरे घर के पास से ही शुरू होता है। पूरब-दक्षिण से ठीक उसी प्रकार जैसे मेरे घर के ठीक उत्तर-पूरब से महुआबारी का आरम्भ होता है। नौरंगा के बाद ही मेरे गांव के पूरब-उत्तर कोण पर दो फलांग दूर 'पांडे की बारी' थी और डेढ़ फलांग दूर उत्तर 'खोंचा की बारी' थी।

मेरा जन्म एक सामान्य परिवार में हुआ था। गाँव का नाम बरेजी जिसको मैं बड़े भाव से बृजग्राम भी कहा करता था। भण्टापोखर को मिटाकर जीरादेई को उसके स्थान पर खड़ा करने की तरह नहीं, बरेजी को लिखा-पढ़ा-सिखा कर बृजग्राम के रूप में सुसंस्कृत करने की एक किशोर कल्पना युवा काल आते आते मर गयी।

बरेजी छोटा होने के कारण बहुत खूबसूरत गाँव है। इसके दक्षिण में एक मील दूर सरयू नदी बहती है। बरेजी से दो ढाई मील दूर देवरहवा बाबा का धाम है। बरेजी के पश्चिम में एक विशाल नद प्रवाह है जो इसकी पीठ मलमल कर नहलाता है। इस नर प्रवाह का नाम है 'कसिली'। यह कभी नद तो कभी नाला। वर्ष भर में 6 महीना सूखा रहता है। जाड़े की फसल देता है।





गरीबों और पशुओं के लिए, अपार स्नेह शशि अपने हृदय में संजोए रहता है। गांव से हटकर पश्चिम तरफ यह नद प्रवाहित होकर सरयू नदी में मिल जाती है। गांव के उत्तर इसी नदी की एक बेटी जिसका नाम है 'नेती' बहती है। बरेजी तीन तरफ से नद स्त्रोतों से घिरा है। वर्षा के मौसम में यहां एक अच्छा खासा प्रायद्वीप बन जाता है। पूर्व में इसकी सीमा सैथावरों के गांव तेलिया कला से जुड़ी है। इसकी पर्वी सीमा पर दो पोखरे हैं जिनका नाम 'धोबही' और 'चौपटही' है। 'धोबही' के किनारे पर आम के दो पेड़ किसी जमाने से चले आ रहे हैं। वे अभी भी हैं। इस पोखरा में बेरा या फूल तोड़ना बड़ा आनंददायक होता है। गांव के लोग खास तौर से बच्चे इसमें प्रायः नहाते हैं। कभी-कभी दुर्घटना भी हो जाती हैं। एकाथ बच्चे इसमें ढूब कर मर भी गए हैं। गांव के लोग उसके मृत को अपने-अपने ढंग से याद करते हैं। रात में लोग प्रायः उधर से निकालना पसंद नहीं करते। उत्तर-दक्षिण दोनों तरफ कृषि योग्य खेत हैं। रवि और भद्रई की दो फसलें काटी जाती हैं और अरहर भी होती है। अरहर पहले बहुत होती थी मगर पानी के बहाव से जमीन नीचे पड़ती जा रही है अब अरहर की फसल पानी के जमाव के कारण नष्ट हो जाती है। धान, गेहूं, चना, मटर, मक्का, अरहर को दो, मटुआ, टांगुन, तीसी, तोरी, तिल, सरसो, गन्ना, आलू आदि यहां के लोग उपजाते हैं।

चकबंदी में यह बगीचे आबादी की अदला बदली में काट डाले गए। अब यह खेत बना डाले गए हैं। आम के इन बगीचों में कुछ बड़े ही अच्छे किस्म के आम के पेड़ रहे हैं किंतु अब तो नई पीढ़ी को उनकी याद भी नहीं है। कुछ बड़े बूढ़े हैं जो उनके नाम से चौकजाया करते हैं। गोया उनकी कल्पना शक्ति को किसी ने बिजली के कोड़ों से प्रताड़ित कर दिया हो। सामी काका का धमसहवा, मुख्तार साहब की कटहरिया, मुखिया बाबा का अगोरवा, देवधारी बाबा की चउरिया, नौरंगा की सेन्हुरिया, धर्मराज की सेन्हुरिया, पांडे की बारी का गोलका, खोंचा की बारी का कोंहवा खूबसूरत किंतु अत्यंत कड़वा बेलामवा रिश्तेदारियों में तोहफे के रूप में भेजे जाते थे। मुझे याद है जब 1943 में वाराणसी सेंट्रल जेल से मुक्त होकर मैं घर पर आया था तो मेरे पिताजी ने अश्रुपूरित नयनों से पेनहुरिया के आम पानी में भिगोए हुए मेरे सम्मुख रखवाए थे। वे रसाल तरु ताज नहीं रहे। एक जमाने से वे चलते आ रहे थे। उनकी याद करने वाले लोग भी नहीं रहे गए। जो थोड़े से लोग उस जमाने के हैं अभी वे स्वयं इतने जर्जर हो गए हैं भीतर से भी और बाहर से भी की उनको अपना भी कुछ पता नहीं है। धमसहवा, सेनहुरिया सिंदुरिया अपूर्व के नाम सबको पवन रह्य नवरंगा में अब कुछ वर्ड संकर बीज के कलमी कलमी आम के पेड़ हैं जिनमें केवल बुद्धा है स्वाद नहीं है जिनमें केवल विकार है पोषक तत्व नहीं जिनका मोट केवल मोटे सेठ की बड़ी तो जैसा आकार है मगर जो हड्डा कड्डा और सुडोल नहीं है नवरंगा निवासी पुराने आम के पेड़ आने वाले जमाने





जमाने का हाल पहले से ही जानते थे इसीलिए उन्होंने अपने पीछे अपनी गुठली अभिजात कर्स में नहीं छोड़ी। गरबा मैं तो आज भी नहीं हूं कि वहां जाने पर मुझको महुआरी होते हैं अपने आप अच्छे लगे तो लेकिन मैं तो रसाल प्रेमी हूं उस रसाल का प्रेमी हूं जो देवताओं पर अर्पित होता है और जिसको पाकर देवता प्रसन्न होकर वरदान देते हैं। महुए में दोगलापन नहीं आने पाया है यह संतोष का विषय है।

मेरी सही जन्म तिथि का पता नहीं है। कुण्डली जन्म के चार वर्ष बाद चोर चुरा ले गये। प्रथम विश्वयद्ध के बाद सन् 1919 के किसी महीने में मेरा जन्म हुआ होगा। विद्यालय रजिस्टर में 1 अगस्त 1919 मेरी जन्मतिथि अंकित है। इसी को सच मानता हूं। इसी से काम चलाता हूं। ऋतुओं में मुझे पावस और बसन्त अतिशय प्रिय हैं। लिखन-पढ़ने का काम इनमें ज्यादे होता है। मेरी माँ फागुन के अन्तिम चरण को मेरी जन्मतिथि बतलाती है। बसन्त ऋतु के साथ मेरी प्रकृति अनुकूलता का यह कारण भी सम्भव हो सकता है। अजीब बात है कि इन दोनों ही ऋतुओं में मेरी आत्मा आह्लादित हो उठती है। किसी भी ऋतु में काव्य रचना के समय मेरे मानस की प्रकृति या तो बसन्त अथवा पावस की स्थिति में परिवर्तित हो जाती है। जन्मतिथि की इस अनिश्चयता के कारण शाश्वत एवं अमर काव्य साधना की इन दो जन्मतिथियों का अधिकारी होकर भी मैं अतिथि वाला हूं। संसार ही एक अतिथिशाला है। इसमें कोई भाग्यवान तिथिवान नहीं होता। यह सोचकर मैं बहुत ही सुखी एवं सन्तुष्ट हूं कि दुनिया में मेरी जन्मतिथि का नहीं मेरी मृत्यु तिथि का ही सम्भवतः सही रेकार्ड बने। जिस मनुष्य की मृत्यु तिथि धूमधाम से नहीं मनाई जाय उसकी जन्म तिथि का उत्सव कोई उत्सव ही नहीं है। अवतारों की बात निर्विवाद है। अवतारी महापुरुषों की मृत्यु होती ही नहीं। इसीलिए उनका मात्र जन्मोत्सव मनाया जाता है। हिन्दू संस्कारों में श्राद्ध और पिण्डदान का महत्वपूर्ण स्थान है। उसको भी जीवन से जोड़कर नैरन्तर्य के अमर प्रवाह का स्थायी रूप दे दिया गया है। मुझे यही रूप श्रेयस्कर और मांगलिक प्रतीत होता है।

मेरे पितामह श्री पण्डित रामलक्ष्मन उपाध्याय थे जो सामान्य रूप से लछनू बाबा और विशेष रूप से चाचा के नाम से विख्यात थे। मेरे पिताजी उनको चाचा कहते थे। वे कान से कुछ कम सुनते थे। मेरे पितामहश्री के पिता का नाम स्वनामधन्य श्री पं. रामसहाय उपाध्याय था जो अपने समय के एक बड़े जर्मीदार और नामी व्यक्ति थे। उनसे तीन कुल चले जो आज भी किसी न किसी रूप में वर्तमान हैं। मेरा जन्म संयुक्त परिवार में ही हुआ था। मेरे पितामह ने परिवार बड़ा होने के कारण पार्थक्य का मार्ग ग्रहण किया। उन्होंने अलग एक मकान बनवाया और अपने निजी पराक्रम और व्यवहारपटुता तथा अपने लायक पितृभक्त पुत्र की निरुपाधिक भक्ति के बल पर





अपना हिस्सा बखरा बढ़ा लिया। वे गांव में तथा जवार में एक सर्वप्रिय प्रतिष्ठित व्यक्ति के रूप में मान्य हो गए। उपरोक्त अन्य दो कुल चलते रहे किन्तु प्रपितामह की सम्पूर्ण श्री मेरे पितामह में व्याप्त हो गयी। सन् 1936 में मेरे पितामह का देहावसान हुआ। उनके दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र का नाम पण्डित राधाकृष्ण उपाध्याय और कनिष्ठ पुत्र का नाम पण्डित सरयू नारायण उपाध्याय था। मेरे पिता पण्डित राधाकृष्ण उपाध्याय का देहावसान सन् 1961 में 80 वर्ष की अवस्था में हुआ। मेरे पितामह की भी अवस्था मृत्यु के समय 80 वर्ष के ही लगभग थी। मेरे चाचा पण्डित सरयू नारायण उपाध्याय का देहावसान सन् 1974 में 70 वर्ष की अवस्था में हुआ। दोनों भाइयों में आदर्श प्रेम था। उनके बीच जो प्रेमभाव था उसकी तुलना लोग राम और लक्ष्मण के प्रेम-भाव से करते हैं।

मेरे पिताजी का नाम पण्डित राधाकृष्ण उपाध्याय है। मेरे दो भ्राता हैं, एक ज्येष्ठ और दूसरे कनिष्ठ। ज्येष्ठ भ्राता का नाम है पण्डित जगदीश नारायण मालवीय। वे नाम के साथ उपाध्याय नहीं मालवीय लिखना पसन्द करते हैं। मालवीय इसलिए कि समस्त यजुर्वेदी ब्राह्मण समाज अपने को मूलतः मालवा का निवासी मानता है। स्वनामधन्य पण्डित मदन मोहन मालवीय ने इस तथ्य का पता लगाकर अपने नाम के आगे चौबे के स्थान पर मालवीय उपाधि का प्रयोग किया। यजुर्वेदी ब्राह्मण समाज ने इस अलंकार को सर्व धारण किया। हमारी पट्टीदारी के बहुतेरे पढ़े लिखे लोग अपने नाम के आगे मालवीय उपाधि लिखते हैं।

मेरे बड़े भाई साहब के ज्येष्ठ पुत्र सतीश चन्द्र शर्मा और कनिष्ठ पुत्र अशोक शर्मा मलयज, मेरे छोटे भाई डॉ परमानन्द उपाध्याय के पुत्र रवीन्द्र नाथ उपाध्याय 'चुल्ली', हमारे पट्टीदार पण्डित राघव उपाध्याय के पुत्र चन्द्रभूषण उपाध्याय जो इन दिनों मध्यप्रदेश में डिग्री कालेज में इतिहास विभाग में है आदि अनेक कवि हैं किन्तु प्रचार से इन्हें कोई मतलब नहीं। सबने कविता को जीवन के पूर्णानन्द के लिए अपनाया है। ये कविता कमाते नहीं कविता जीते हैं।

मेरे अनुज डॉ. परमानन्द उपाध्याय हैं। काशी विश्वविद्यालय से चिकित्सा शास्त्रा के वे स्नातक हैं। वे यशस्वी एवं लोकप्रिय चिकित्सक हैं। अपने क्षेत्र में उनकी बड़ी ख्याति है। उनके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि रोगी जिसका टिकट भगवान के यहां से नहीं कटा है डॉ. परमानन्द के यहां से पूर्ण आयु लेकर जाता है। डॉ. साहब राजनीति और साहित्य में भी अपने स्वतंत्र विचार रखते हैं। रोगियों की चिकित्सा और उनकी सेवा के बाद डॉक्टर साहब अपनी सेहत अपनी गोष्ठियों में बनाते हैं।

उनके विचार व्यवहार की कसौटी पर खरे उतरे या खोटे किन्तु सिद्धांत की पीठिका पर देचमचमाते रहते हैं। वे अपने तेजस्वी तर्क एवं वर्चस्व के कारण बहुत से 'बोलतू जीवों' को मूक प्राणी बना देते हैं। उनकी तंग पूर्व युक्तियों का आनंद प्राप्त करने के लिए नगर के विशिष्ट





व्यक्ति उनके यहां प्रायः जमे रहते हैं। रोगियों की चिकित्सा और उनकी सेवा के बाद डॉक्टर साहब अपनी सेहत अपनी गोष्ठियों में बनाते हैं।

बड़े भाई साहब का जीवन संघर्ष का जीवन है। जिस प्रकार के परिवार में हम तीन भाई पल रहे थे उसमें जीवन रक्षा का एकमात्र उपाय संघर्ष ही था। बड़े होने के कारण संघर्ष का प्रत्यक्ष प्रभाव बड़े भाई साहब पर पड़ना अनिवार्य था। हाईस्कूल (1933) के बाद उनकी पढ़ाई रुक गई। उन्होंने प्राइवेट इंटरमीडिएट किया 1936 में। पिताजी जमीन की पैमाइश के समान अफसर (मुंशीराम) थे। वे अमीन साहब के नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने सैकड़ों व्यक्तियों को अमानत का काम सिखाया और उन्हें अमीन बना दिया। उनकी आमदनी साधारण थी। हमारे बाबा सरल स्वभाव के सीधे साथे व्यक्ति थे। पिताजी की आमदनी के बल पर वे कर्ज लेकर जमीन खरीदते रहते थे। कजदिने वाले अपने ही व्यक्ति होते थे। किंतु हमारे बाबा की सिधाई का अनुचित लाभ उठाना भी खूब जानते थे। समय रहते पुरनोट बदलवा लेना, उसकी तारीख में गड़बड़ करना, सूद की और मूलधन की रकम मनमानी करके बदल लेना आदि अनेक दुष्टतापूर्व धूर्तताएं करके पिताजी की गाढ़ी कमाई को हमारे बाबा के तथाकथित मित्रगण लूटते रहते थे। हमें याद है यद्यपि उस समय हम बच्चे थे। रुपए थालमें गिने जाते थे। डौड़ी तथा खरुआ की थैलियों में भर-भर कर रुपए साहुओं के पास भेजे जाते थे। मगर पुरनोटों के मायाजाल का सिलसिला खत्म नहीं होता था। हमारे पिता जी बड़े ही पितृभक्त थे। वे अपनी माता के भी बड़े भक्त थे। उनकी माता जी उनको हमेशा ‘हमार सरवन’ के नाम से संबोधित करती थी। हमारे बाबा गृहस्थी के मामले में कठोर आदर्श के व्यक्ति थे। हमारी ईया जी पर वे बहुत क्रोध करते थे। गांव के लोग हमारी ईया जी को बड़ी श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखते थे। सभी लोग हमारे बाबा को चाचा और ईया जी को चाची कहते थे। हमारे पिताजी भी हमारे बाबा को चाचा जी और माताजी को ‘माई’ कहते थे। अपने मां-बाप के अनन्य भक्त थे फिर भी सूदखोरों के प्रभाव से घर के भीतर कभी-कभी विभिन्न अशांति और तनाव का वातावरण उत्पन्न हो जाया करता था। हमारे परिवार को अर्थकष्ट झेलने का अभ्यास हो गया था। हमारे बाबाजी शरीर धुन-धुन कर काम करते थे किंतु अफसोस कि वह जीवन भर कर्ज के चंगुल से मुक्त नहीं हो सके और पिताजीकी सारी कमाई सूदखोर चाट ले गए। हमारे बाबा के दिवंगत होने के उपरांत भी बहुत से खेत मढ़ीही रेहनपर पड़े थे। फसल खलियान में ही कुड़क हो जाया करते थे। बैल चुरा कर रखे जाते थे। उन साहूकारों की औलाद आज भी जीवित है और उनके अभिजातों के ऊपर से उनका खानदानी मलेच्छ अभी तक उतरा नहीं है।

जिस प्रकार के परिवार में हम तीनों भाई पल रहे थे उसमें जीवन रक्षा का एकमात्र





उपाय संघर्ष ही था, क्योंकि वह सब हवा सबसे पहले बड़े भाई साहब कोई सहनी थी। इसलिए नियमित रूप से अनुभव करने का अवसर उनको नहीं मिला। मेरी पढ़ाई लिखाई भी जैसे-तैसे चल रही थी। परमानंद अभी बच्चे थे। धूर का पुआ पकाते।

हमलोग पिताजी को दादा जी कहते थे। हमारे दादा जी ने उर्दू मिडिल परीक्षा पास की थी। उस समय उर्दू का ही बोलबाला था। अंग्रेजी स्कूल कहीं कहीं थे। हमारे पिताजी को शेरो-शायरी का बड़ा शैक था। वे उर्दू अदब के लहजे में बात करते थे और बातचीत के दौरान उर्दू शेर बड़ी माकूल जगह पर उतारते थे। लोग उनको घेरे रहते थे। नौकरी धन्धे से जब कभी वे गांव आते थे तो जवार में बिजली की तेजी से यह खबर फैल जाती थी कि अमीन साहब आए हैं। हमारे दादाजी का व्यक्तित्व बड़ा ही भव्य और प्रभावशाली था। अचकन, चूड़ीदार पाजामा और साफा बांधकर जब वे घर से निकलते तो राजसी तेज स्वतः उनके चारों ओर विकीर्ण हो जाया करता था। घर के झांझटों से ऊब कर सन् 1914 के विश्वयद्ध में उन्होंने सेना में नौकरी कर ली थी और भारत से बाहर अरब, मेसोपोटामिया, बसरा आदि जगहों में वे भेज दिए गये थे। युद्ध की समाप्तिके उपरान्त उनको दो तमगे और प्रमाण-पत्र भी मिले थे। उनको सर्विस ढूँढ़नी नहीं पड़ती थी। बड़ी इज्जत के साथ उनको उनकी योग्यता के अनुसार काम मिल जाया करता था। वे हमेशा भद्र समाज में ही रहते थे और अपने गांव एवं परिवार के पिछड़ेपन को शिक्षा के द्वारा दूर करने की कोशिश करते थे। इस दृष्टि से हमारे पिताजी केवल हमारे गांव के ही नहीं हमारे जवार-पथार के वे अगुआ थे। सामर्थ्यनुसार वह हर एक व्यक्ति की सहायता किया करते थे। बहुतों को पढ़ाया, अनेक व्यक्तियों को नौकरी दिलाई, कितनों को अमानत का काम सिखाया। हमारे पिताजी एक जीवित संस्था के रूप में समाज की मूल्यवान मूक सेवा करते रहे। यदि सूदखोर ने उनको जकड़ ना लिया होता है और यदि पारिवारिक अशांति से वे कुछ मुक्त रहे होते तो जमीन जायदाद बढ़ ही गई रहती, लोक कल्याण का मार्ग भी अधिक प्रशस्त हुआ होता और हम दोनों भाइयों के पढ़ाई खटाई में न पड़ी होती। हम लोगों को उत्तमति उत्तम शिक्षा दिलाने की उत्कृष्ट कामना के लिए हुए दादाजी असहाय हो जाते थे। यहीं वे अपनों को हारा हुआ समझते थे।

सन् 1927 में या 1928 जब हमारे बड़े भाई साहब ने अपर प्राइमरी की परीक्षा पास की तेलिया ग्राम के मदरसे से तो हमारे दादा जी ने उनको अंग्रेजी पढ़ाने के लिए पास के पनिका बाजार से एक मुंशी जी को ट्यूटर के रूप में नियुक्त कर दिया और मुंशी जी हमारे बड़े भाई साहब को किंगरीडर पढ़ाने लगे। मैं भी जबरदस्ती रो-गाकर भाई साहब के पास बैठकर मुंशी जी से अंग्रेजी पढ़ाने के लिए हठ करने लगा। उस समय मेरी उम्र आठ वर्ष की थी और दर्जा दो में





पढ़ता था। दो महीने गर्मियों की छट्टी में मुंशी जी ने पढ़ाया। जुलाई में हमारे बड़े भाई साहब का नाम बस्ती के किसी स्कूल में लिखाया गया। जहां हमारे बड़े महान पूफा जी जो 'कानूनगी साहब' के नाम से प्रसिद्ध थे। कानूनगी के पद पर काम करते थे। फलतः हम फिर प्राइमरी स्कूल में भर्ती हो गए। किन्तु दो महीने के बाद भाई साहब बस्ती से घर आ गए और हमारे दादाजी ने उनका नाम बरहज किंग जार्ज स्कूल में लिखा दिया। मैंने पुनः भाई साहब के साथ अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने का हठ किया। दादाजी ने हमारा भी नाम किंग जार्ज स्कूल में लिखवा दिया। भाई साहब का नाम पांचवीं कक्षा में था। मेरानाम तीसरी कक्षा में लिखा जाने लगा तो मैंने फिर हठकिया कि मेरा नाम भाई साहब से एक दर्जा कम में लिखा जाए। हेडमास्टर पं. जानकीशरण तिवारी थे। दादाजी ने, तिवारी जी ने, अध्यापकों ने, सबने मुझको समझाना चाहा और मैंने रोना शुरू किया। लाचार होकर मेरा नाम फोर्थ क्लास में लिख लिया गया। अब मैं भी अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने लगा। उसवर्ष भाई साहब पास हो गए और मैं फेल हो गया। मुझे खूबयाद है कि मेरे बाबा ने हेडमास्टर साहबके पैर पर अपनी पगड़ी रख दी कि मोतीलाल को पास कर दिया जाय। मेरे बाबा कानसे ऊँचा सुनते थे। क्रुद्ध थे। मैं बालक था। मैं केवल सिसकता और रो रहा था। आजिज होकर तिवारी जी ने मेरा प्रमोशन कर दिया। जब तक मैं नवीं कक्षा में नहीं पहुंचा बराबर एक विषय में उत्तीर्ण किया जाता था। मेरा अंकगणित कमजोर था। नवीं कक्षामें रेखागणित और बीजगणित का सहारा पाकर मैं हरा हो गया। फिर तो प्रमोशन पाने का कभी अवसर नहीं आया। मगर निर्द्धन्द्ध होकर उन्मुक्त मनसे पढ़ने की भी सुविधा कभी प्राप्त नहीं हुई। हमारे दादा जी जब घर आते थे तो हमको अंकगणित पढ़ाया करते थे। मुझे अभी तक उनकी छड़ी की मार नहीं भूली है। मन सेर छटाक जोड़ बाकीका हिसाब मेरे ऊपर भार बनकर आखिरकार जमाने से लग गया।

हमारे दादाजी का क्रोध बड़ा भयंकर रूप धारण कर लेता था। वे गैरों पर कभी क्रुद्ध नहीं होते थे। वे हमेशा अपनों पर क्रोध करते थे। उनका यह क्रोध उनके स्वभाव का एक सहज स्वरूप बन गया था। हमारे दादा जी अपने पिताजी पर कभी-कभी क्रुद्ध हो जाया करते थे और किसी भी समय गृह त्याग कर देते थे। सहज स्वाभाविक ढंग से अपनी नौकरी पर वे घर से कभी नहीं जा पाते थे। घर का सारा पचड़ा विदा की पैलागी के समय शुरू होता था और खिन्न मन से एक दूसरे से सब अलग होते थे। दादाजी के क्रोध के चपेट में मैं प्रायः पड़ जाया करता था। जब वे छड़ी उठा लेते थे तो क्या मजाल उनके सामने कोई चला जाए। आज इन पंक्तियों के लिखने के समय दादाजी की छड़ी याद आती है और उनकी मार के आगे कृतज्ञता एवं श्रद्धा से सिर झुकजाता है। उनके हृदय की विशालता, उदारता और करुणा की भावना आज भी मेरे ऊपर





सुखद छाह की शीतलता प्रदान करती हैं। मेरे अंतर तम में रोम रोम में दादाजी व्याप्त है। आश्चर्य की बात है कि दादाजी हमारे बड़े भाई साहब पर अथवा छोटे भाई परमानन्द पर कभी इस प्रकार कुछ होते नहीं देखे गए।

जब भी किसी बारात के जनवासे में वे जाते थे तो हम दोनों भाइयों को भी अच्छे साफ-सुधरे कपड़े पहनाकर अपने साथ ले लेते थे। जनवासे की सभा में हम दोनों को उनका सैनिक आदेश मिलता था सख्त ईशप्रार्थना या कोई भी सुन्दर कविता या मानस की चौपाई सुनाने का। हम दोनों भाई सभा में हाथ जोड़कर खड़े होते थे और स्वर में स्वर मिलाकर 'इस देश को हे दीनबन्धो आप फिर अपनाइए' गते थे। हमारे दादाजी कितने महान् शिल्पी और उच्चकोटि की कल्पना करने वाले महाप्राण शक्ति थे कि उन्हीं के बताए निर्देशित पथ पर आज यह जीवन का संकट चल रहा है। हमारी मंच की दुनिया हमारे दादाजी की कृपा का फल है, उन्हीं का आशीर्वाद है।

बार बार आती है मुझको मुधर यादबचपन तेरी, गया ले गया तू जी की सबसे मस्त खुशी मेरी। जेठ की तपतीदुपहरी में सिलवट पर सीप रगड़ कर उसमें नन्हासा मजे का सुराख बनालेना, बारीक नमक की पुड़िया पास में रख लेना, गुल्ली और डण्डा से लैस होकर हेमनारायण भाई के साथ कभी पांडे की बारी, कभी खोंचा की बारी तो कभी नौरंगाकी बारी में दिन-दिन भर पैतरा भाँजना, अगहन पूस के महीने में इमली, लहसुन मरिचा नमक की चटनी के साथ ताल में लेतरी का साग खाते फिरना, मैंस चराना, नाद भरना, भूसा चलौंसी चलाना, बैलउकड़ाना, खाद फेंकना, घास गढ़ना, जेठ अषाढ़ की रात में टपके हुए आमों को बीनने के लिए भुकभुकही लालटेन और डण्डा लेकर बागोंमें जाना, मटर और चना के खेतों में होरहा फांकना, होली में जोगीड़ा और चौताल गते फिरना, सम्मत जलाकर लम्बी लम्बी लुकारियां भाँजना, कीचड़ और रंग का उपद्रव मचाना, दंवरी हांकना, हेंगा पर बैठना, भूसा ढोना, परम उत्साह और ओज के साथ आदि समस्त बातें आज आंखों में अश्रु बूँद बनकर मेरे आगे ही दुलक दुलक कर धूल में मिलती जा रही हैं और मैं असहाय सा उन्हें बटोरने का निष्फल प्रयत्न करके हार जारहा हूँ। मुझको कभी कवि सम्मेलनों का मंच दिखाई पड़ता है तो कभी रेडियो स्टेशन का स्टूडियो, कभी टेलीविजन तो कभी फिल्म की दुनिया।

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय राष्ट्रीयता की लहर से ओतप्रोत था। विश्वविद्यालय में छात्रों का जबरदस्त यूनियन था जो अजातांत्रिक ढांचे में गठित था। उनकी अपनी पार्लियामेंटथी जिसके प्रेसिडेंट प्रधानमंत्री तथा अन्य पदाधिकारियों का छात्रों के बीच आम चुनाव होता था। इसकी बड़ी लहर-बहर रहा करते थे। इस कार्य में राजनीति विभाग के प्रोफेसर श्रीयुत मुकुट बिहारी लाल जी बड़ी रुचि रखते थे। सन 1938-39 में श्री जय बहादुर सिंह पार्लियामेंट के प्रत्याशी के रूप





मैं चुनाव लड़ रहे थे। छात्रोंचित उत्तेजना और हुल्लड़ बाजी का भी रंग अपने चरम सीमा पर था। शांत प्रकृति के अध्ययन प्रेमी छात्र इस वातावरण से पराया उदासीन रहा करते थे। विज्ञान के और इंजीनियरिंग कॉलेज के छात्र इसमें दिलचस्पी नहीं रखते थे। इस हुल्लड़ बाजी में आर्ट्स कॉलेज के छात्र ही विशेष रंग लूटते थे और संपूर्ण विश्वविद्यालय में हड़कंप मचाए रहे थे। राष्ट्रीयता की भावना से कम अनुशासन हीनता की भावना से अधिक प्रेरित छात्र समूह उस समय भी अशोभन कृत्यों पर उतारू हो जाता था। संभवतः ऐसे ही किसी आरोप में श्री जय बहादुर सिंह का विश्वविद्यालय से निष्कासन भी हो गया। बाद में जय बहादुर जी सुप्रसिद्ध कम्युनिस्टनेता के रूप में जनता के प्रिय हो गए। हमारा विश्वविद्यालय स्वतंत्रता संग्राम में लड़ने का प्रशिक्षण केंद्र था। उस समय इलाहाबाद यूनिवर्सिटी को सरकारी पीठ समझा जाता था। 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस के रूप में बसंत पंचमी का उत्सव विश्वविद्यालय स्थापना दिवस के रूप में अपूर्व उल्लास से हम सभी मनाते थे। हजारों की संख्या में छात्राएं पीली बसंती रंग की साड़ी पहनकर बसंत पंचमी के समारोह में सम्मिलित होते थे। हमारा विश्वविद्यालय एवं जागृति संस्था के रूप में हम लोगों को सर्वदा नई चेतना, नई शक्ति, नई भावना, नई कल्पना प्रदान करता था। मैं गांव का बालक इस महान विस्तृत वातावरण में विचरण करने का अवसर अपने पूर्व जन्म के पुण्य के कारण ही प्राप्त कर सका था। देवरिया जिले के कोहड़ा ग्राम निवासी पंडित नंदकिशोर तिवारी भी हम लोगों के सहपाठी थे।

वे मेधावी एवं गंभीर स्वभाव के एक अध्ययन प्रेमी छात्र थे। हम सभी विश्वविद्यालय के दिव्य और पुनीत वायुमंडल में समान रूप से पल रहे थे। अनेक रूप-रंग थे, अनेक प्रकृति और स्वरूप पर अपने भाव और विचार के अपने सहस्री पुत्र-पुत्रीयों को विश्वविद्यालय अपने हृदय से लगाए रहता था। सबको समान भाव से प्यार करता था और सभी बच्चे अपनी माता से भी अधिक की भावनाएं उस पर निष्ठावर रहते थे। कुछ आतंकवादी उपद्रव छात्र तब भी थे किंतु उनका कोई अस्तित्व नहीं बन पाता था। वे आदर्श छात्रों के पिछलगुआ होते थे।

अभी उनके नेतृत्व का जमाना नहीं आने पाया था। किंतु ये तत्व उस समय भी रहा करते थे। इसका कारण यह था कि संपूर्ण भारत उस समय एक ही लक्ष्य से प्रेरित था, एक ही की भावना से भरा हुआ था और वह था- स्वतंत्रता। अनेक प्रकार के राजनैतिक पार्टियां स्वतंत्रता के सूर्य को ही अपना अर्थय चढ़ाती थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत सबके अपने-अपने उद्देश हो गए। एक ही कुर्सी को यह पार्टियां भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखने लग गयी। फलतः विश्वविद्यालयों में पहले से चले आ रहे हैं यह तत्व दल ये छात्र नेता के रूप में उभर आये। विश्वविद्यालय अध्ययन के केंद्र, साधना की तपस्या, तपस्या की भूमि के रूप में नहीं रह गए और अब वे राजनीति के अखाड़े





हो गए वहीं स्नातकों का वर्ग अब छायावादी, रहस्यवादी एवं प्रगतिशील गैंगों के रूप में बदल गया। तब यह लोग मेधावी छात्रों के पीछलगुआ थे। अब मेधावी छात्र उनके पिछलगुआ हो गए। तब मेधावी छात्रों का भविष्य था, ये नगण्य थे अब उनका भविष्य हैं, मेधावी छात्र का भविष्य धूमिल है। हमारा पुराना प्राणों से प्यारा विश्वविद्यालय भी इन्हीं अवस्थाओं के मध्य से गुजरने मजबूर हो गया।

अर्जुन चौबे की संगति और विश्वविद्यालय के उन्मुक्त वातावरण के कारण मेरी कविता लता लहराकर बढ़ने लगी। महादेवी की वेदना की खाद प्रसाद के ओज का पानी, पंत की भावना की भूमि और निराला की कल्पना के वायुमंडल से उत्पन्न मेरी कविता के बीजांकुर को अर्जुन चौबे कुशल कृषक की भाँति संभालने लगे। वे स्वयं कवि थे। छायावादी भावनाओं से पूरित कविता की पंक्तियों को गेय छन्दों में लिखकर अशोक तरुवों की छाया में अपने खाली समय में वे भावपूर्ण ढंग से सख्त सुना कर मुझको कविता के प्रति विकल बनाया करते थे। मैंने वेदना, अभाव, निराशा, कष्ट, संघर्ष, उद्दिग्रता, तड़पन, ममता त्याग, सच्चाई, धीरज, संवेदनशीलता के घर में जन्म लिया था। यही मेरी पैतृक संपत्ति थी। आरंभ कि मेरी कविताओं में इन से भिन्न होता भी क्या। इसी समय मेरी कविता है-

बेबसी आंख के मोती यहां गिरना

मना है।

मेरा भी स्वर मधुर था। मैं भी सख्त गाकर अर्जुन भाई को अपनी कविता सुनाया करता था। इस प्रकार बीए द्वितीय वर्ष का हमारा समय छात्रोंचित विकास की दिशा में बहुत ही संतोषप्रद ढंग से बीत रहा था।

बिड़ला हॉस्टल का हमारा सुखमय जीवन सुंदर सपने के भाँति बीत गया और फाइनल की परीक्षा देकर हम दोनों भाई अपने गांव आ गए। उसी वर्ष गर्मी की छुट्टियों में मेरा गवना हुआ। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती लक्ष्मी देवी उपाध्याय जीवन संगिनी हुई। सामान अवस्था सामान कद सामान्य ढंग और सामान स्वास्थ्य अंतर यही कि वे निरक्षर ग्रामवाला थी यद्यपि बड़े कुलीनपरिवार की थी। इनसे भी मेरा परिचय प्रघाण होता गया। दोनों भाई द्वितीय श्रेणी में बीए उत्तीर्ण हो गए। हनुमान जी का प्रसाद गांव में बांटकर खुशी मनाई गई। हमारे दादाजी बेतिया राज्य मधुबनी सर्किल में अपने फार्म पर थे। भैया जी घर की गेठीयवा की तथा घेवड़ई की पाही की देखभाल करते थे। बाबू की पढ़ाई तो हाई स्कूल के बाद ही समाप्त हो गई किंतु होती किंतु अपनी लगन और अध्ययन करने की उत्कृष्ट अभिलाषा के कारण बीए कक्षा तक उनको पढ़ लेने का अवसर प्राप्त हो गया। अब आगे पढ़ पाना दोनों भाईयों के लिए असंभव हो गया। पिताजी ने भाई साहब को अपने पास बुला लिया और वे अकाउटेंसी तथा मुख्तार कारी की व्यवहारिक शिक्षा प्राप्त करने लगे। मेरे बारे में





कोई निर्णय लेना असंभव हो गया।

जुलाई सन 38 का महीना भी समाप्त होने लगा। इस साल आम की खूब बहार रही महुआ भी अपने रंग में खूब जमा हुआ था। मगर उस समय मैं यूनिवर्सिटी में परीक्षा के कार्य में उलझा हुआ था। भद्रई की फसल बोई जा चुकी थी। कोदो-धान और अरहर की फसल अच्छी लगी थी। सोहनी का काम शुरू हो गया था। मैंने आम की बहार में गुल्ली डंडे का खूब लुत्फ लूटा था। हेमनारायण भाई हमेशा हमारे साथ ही रहते थे। काशी नाथ उपाध्याय जो आजकल के.एन. मालवीय नाम से प्रसिद्ध प्रसिद्ध है और सतराव हायर सेकेंडरी स्कूल में प्रधानाचार्य हैं हमारे उन्हीं दिनों के हमजोलीयों में हैं। हमारे खेलकूद के कार्यों के बीच सहयोगी नेता थे। वे उत्तम खिलाड़ी थे। आगे चलकर खेलकूद की दुनिया में उन्होंने क्षेत्रीय ख्याति भी अर्जित की। फुटबॉल, क्रिकेट, बैडमिंटन, बालीबाल, कैरम, शतरंज, ताश, गुल्ली डंडा, कबड्डी, चिक्का आदि खेल में उनकी मात्र रुचि ही नहीं पूरी तैयारी थी। इन्हीं अपने गांव के तथा परिवार के सभी साथियों में गर्मी की छुट्टी बीतगई। आगे पढ़ना सम्भव नहीं था। आयु बहुत कम थी। मैं खेती बारी के काम में भईया जी का सहायक बन गया। इस वर्ष सोहनी का काम मुझे अधिक करना पड़ा था। अपने पैरों पर बराबर चल पाना मुश्किल हो गया था। दोनों पैरों में थी 'चिगुरा' लग गया था।

अंत में मुझ को पढ़ाने के लिए पुनःकाशी विश्वविद्यालय भेजने का निश्चय हुआ और एम.ए. तथा ला डबल कोर्स पूरा कराने का विचार किया गया। यूनिवर्सिटी में नाम लिखाने तथा एक महीने के खर्च के लिए व्यवस्था मेरी धर्मपत्नी के सोने की हंसूली बेचकर की गई। मुझको कभी नहीं भूलेगी वह शाम जब चिगुरे हुए पैर से लंगड़ाते हुए लाररोड स्टेशन पर अपने गांव से सातमील दूर पहुंचा। श्रीमती जी की सोने की हंसूली से प्राप्त धनराशि से मेरे अग्रिम अध्ययन की व्यवस्था हुई।

बाल्यावस्था में मैं अनेक ढंग से देखा जाता था और अनेक नामों से पुकारा जाता था- दुर्बल और क्षीणकाय होने के कारण 'नन्हकू', बेफिक और बेपरवाह होने के कारण 'अवधू', कद में छोटा होने के कारण 'लिटिल' आदि नामों से। हाईस्कूल और इंटरमीडिएट तक मैं 'लिटिल' नाम से ही प्रसिद्ध था। जीवन में लिटिल होकर रहने का मेरा सौभाग्य इतना प्रखर हो उठा कि पूरे नाम का तृतीयांश और पूरी डिग्री का चतुर्थांश मोती बी ए सूक्ष्म नाम लिटिल स्थायी हो गया। बड़ी से बड़ी उपलब्धि मेरे पास आकर लिटिल क्षुद्र हो जाती है। पिफलमों का सुविस्तृत व्यवसायक्षेत्र, बम्बईके वैभव और गौरव में समाहित अपार जन समुदाय, वहाँ का अगाध सागर सभी बड़ी-बड़ी प्रतीक सफलताएं मेरे लिए लिटिल थीं। मंचों का आकर्षण, पत्रा-पत्रिकाओं का निर्बाध प्रचार, राजनेताओं का प्रश्रय, पूंजीपतियों द्वारा सम्मान, अधिकारियों की कृपा, सभा संचालकों की शाबासी, भौतिक

पूंजीपतियों द्वारा सम्मान, अधिकारियों की कृपा, सभा संचालकों की शाबासी, भौतिक





सुखों की उपयोगिता, अच्छे कपड़े पहनने का शौक, सुन्दर सुस्वाद पूर्ण भोजन का रस आदि इस लिटिल को अपनी ओर खींच नहीं पाता। मंचपर मुख परमेश्वर यहकहावत मेरे सम्बन्ध में पूर्ण सत्य सिद्ध हो गयी। लिटिल की ग्रेटनेस की छाप मेरे जीवन में स्थायी रूप से अंकित हो गयी। ‘नन्हकू’ नाम भी इसी तथ्य का समर्थक है।

सन् 1934 में मैंने किंग जार्ज विद्यालय बरहज से हाईस्कूल की परीक्षा पास की। मेरे बड़े भाई साहब ने सन् 1933 में यह परीक्षा यहां से पास की थी। श्रेणी दोनों भाइयों की द्वितीय थी। उस समय जिला हमारा गोरखपुर था। देवरिया सदर तहसील थी। परीक्षायें जिले भर की जुबिली हाईस्कूल गोरखपुर केन्द्र पर होती थीं। अनुचित साधनों की कोई कल्पना नहीं कर पाता था। परीक्षा को वास्तव में परीक्षा ही समझा जाता था। उस जमाने में एक हाईस्कूल बरहज में, दूसरा देवरिया में और तीसरा गोरखपुर में था। एक ही इण्टरमीडिएट कालेज था और वह या सेण्ट एण्ड्रूज कालेज जिसके प्रधानाचार्य एक अंग्रेज थे जिनका नाम था मिस्टर ए सी वेली। मेरा नाम इसी इण्टरमीडिएट कालेज में लिखाया गया। देहाती, क्षीणकाय, दब्बू बालक जैसा कि मैं था, यहीं पढ़ने को विवश था।

मेरे बड़े भाई साहब का एक साल नौकरी ढूँढ़ने के असफल प्रयास में बीतचुका था। उनका भी विचार हुआ इण्टरमीडिएट की परीक्षा में बैठने का। इस लिए मैंने सेण्ट एण्ड्रूज कालेज छोड़ दिया। प्रधानाचार्य महोदय ने दुभाषिए छात्र के माध्यम से मुझको समझाया कि तुम बहुत ही कमआयु के हो और बहुत अबोध बच्चे हो, घर जाओ। दो वर्ष के बाद पढ़ने के लिए आना। इस्तरह सेण्ट एण्ड्रूज कालेज छोड़कर हम दोनों भाइयों ने एक नव स्थापित प्राइवेट शिक्षा संस्था ‘नाथ चन्द्रावत कालेज धर्मशाला बाजार, गोरखपुर’ में नाम लिखाया। अब हम लोग व्यक्तिगत छात्रा के रूप में इण्टरमीडिएट की तैयारी करने लगे। किसी कारण वश सेण्ट एण्ड्रूज कालेज से निष्कासित दोतीन प्राध्यापकों ने यह संस्था कायम की थी जिनके नाम हैं कुंवर बहादुर श्रीवास्तव, श्री जगन्नाथ सिनहा, श्री उमाशंकरलाल। इस संस्था में, इसके नवी होने के कारण, कम छात्र थे किन्तु इसमें जीवन थाक्यों कि इसके प्राध्यापकगण जीवन्त के व्यक्ति थे और सब भाँति सुयोग्य और सक्षम थे। इसी संस्था में देवरिया के श्री धासीराम गुप्त, माननीय मंत्री महोदय श्री राजेन्द्र गुप्त के बड़े भाई साहब भी आर्ट मास्टर थे। इनका मुझपर अपार स्नेह था। ये कैरम के महान खिलाड़ी थे। श्रीमती महादेवी वर्मा के अनुज श्री मनमोहन वर्मा भी इस संस्था में अंग्रेजी के प्रवक्ता थे। वर्मा जी विद्वान थे, मेधावी थे। अंग्रेजी भाषा पर इनका अधिकार था। अंग्रेजों के समान ही थे। अंग्रेजी बोलते थे। बांसुरी वादन में परम प्रवीण, महादेवी जी की कविता पुस्तकों का दर्शन इन्हीं की मेज पर हुआ था। यहीं मैंने नीहार, रश्मि और नीरजा का अवलोकन किया। इन तीनों ग्रन्थों कीसभी कविताओं को बिना





समझे ही मैंने कण्ठस्थ कर लिया। बांसुरी की धुन पर वर्मा जी प्रायः ‘ओ विभावरी’ वाला गीत (नीरज) गाया करते थे और इसी की ध्वनि के भीतर निःसृत शब्दों की मैं पहचान किया करता था-
 चाँदनी का अंगराग
 माँग में सजा पराग
 रश्म तार बाँध मृदुल चिकुर भार री !
 ओ विभावरी।

कौन जाने कि रहस्यमय ढंग से मेरे कोमल किशोर हृदय और कल्पनाशील मस्तिष्क में कविता का बीजारोपण संस्कार हो रहा हो। कविताओं के प्रति यह मेरा प्रथम आकर्षण था। नीरज, रश्म और नीहार को मैं अपने हृदय से चिपकाए रहता था। मेरा स्वर सुरीला था। इनके छन्दों को मैं प्रायःगाया करता था। बांसुरी की धुन पर लय की पकड़ होती जाती थी। इस भाँति श्री मनमोहन वर्मा, हमारे अंग्रेजी के प्रवक्ता पहले कविता गुरु थे।





कविता की सतरंगिनी जीवन में उतरी अवश्य किन्तु कब और कैसे, यह न जान सका। कुछ काल बीता और अपने में एक अलौकिक शक्ति का अनुभव होने लगा। यहीं से कविता की रहस्यानुभूति भी आरंभ हुई। इस रहस्य का अनुभव जैसे जैसे बढ़ता गया सुष्टि का प्रत्येक अवयव, सुन्दर, सुन्दरतर और सुन्दरतम् प्रतीत होने लगा। सौन्दर्य के प्रति आकर्षण का भाव जागा जिसके फलस्वरूप आकांक्षा, अतृप्ति और तड़पन के लोक का सृजन हुआ जो प्राणों की अनुभूति की गहराई में उतर कर हंसता हुआ विदा हो गया-

झूबना था गए झूब हम
चाहे जो भी हों गहराइयाँ
बुलबुले बन के तैरा करें-
अब हमारी ये परछाइयाँ।

किन्तु यह अवस्था कब हुई और कैसे हो गई, इस तथ्य को ढूँढ़ निकालने की क्रिया सरल नहीं है। जो झूब गया और धूँट पर धूँट अनगिनत धूँट पानी पीकर शान्त हो गया वह क्या बताए और कैसे बताए ? अब तो इन्हीं पंक्तियों के भीतर से संगत तथ्यों की पूरी विवरणिका को क्रमबद्ध किया जा सकता है। गोरखपुर नाथ चन्द्रावत इण्टरमीडिएट कालेज से अप्रस्फुटित काव्यबीज काशीविश्वविद्यालय पहुँच कर वायुमण्डलीय तत्व की अभिलाषा से गंगा मह्या के आंचल के छोर में झूलने लगा। काव्य की मधुर वाणी सुनने की व्यग्रता काशी विश्वविद्यालय में गुजन की किसी अव्यक्त पीड़ा का भार वहन करने लगी, यथा-

अरी सखि, धूँधट का पट खोल
मेरा मन उद्धिग्न बहुत सुनने को तेरा बोल
अरी सखि, धूँधट का पट खोल !
कली अभी प्रस्फुटित नहीं है
मन्द समीरन डोल रही है
रस पराग युत राग,
सुरभि बिखरा देना अनमोल
अरी सखि, धूँधट का पट खोल ।

(गोरखपुर, 1935-36)





गुन गुन रे, गुन गुन रे
 भर भर आता उर मेरा
 इन नयनों की छक-छलकन रे
 गुन गुन रे—
 क्या विषाद की सजल रेख यह
 व्यथित व्योम गंगा।
 फूट बही हृदयांचल से जब-
 करुण अश्रु-गंगा,
 शून्य गगन में मूक देवसरि
 अचल और निर्जीव
 मरुथल की सिकता-पुलिन की
 छहर छहर कल कल ध्वनि सुन रे
 गुन गुन रे, गुन गुन रे।

(काशी विश्वविद्यालय, 1937-38)

* * *

बी.ए.होने के पूर्व तक मेरे कविता लोक की यही अवस्था रही। एम.ए. और कानून के त्रिवर्षीय अध्ययन क्रम में प्रथम उत्थान तक वह स्थिति बनी रही। उस समय शिवमंगल सिंह 'सुमन' और पण्डित जानकी वल्लभ शास्त्री विश्वविद्यालय में उच्च वर्ग के स्नातक थे और अपनी कविता प्रतिभा के कारण अत्यधिक लोकप्रिय थे। मेरा इनसे परिचय था। मेरे सहपाठी मित्र अर्जुन चौबे कश्यप थे। उनका निरन्तर साहचर्य था। वे भी बड़ीभावपूर्ण कविताएं लिखते थे और दिव्य तन्मयता से सुनाते थे। मेरी कविताएं, टूटी-फूटी जो भी मैं लिखता था, वे बड़े प्रेम से सुनते थे तथा मुझे प्रोत्साहित किया करते थे। सन् 1938 में आयुर्वेद कालेज के तत्वावधान में शिवमंगल सिंह 'सुमन' और पण्डित जानकी वल्लभ शास्त्री के संयोजकत्व में एक काव्य गोष्ठी का आयोजन हुआ। अर्जुन भाई के साथ मैं भी विशुद्धआनन्दोपलब्धि लोभ से वहां पहुँचा था कि अर्जुन भाई ने मेरा नाम भी कवियों की सूची में मेरे अनजाने में लिखा दिया। नाम की पुकार पर सरककर भागते बना नहीं। विवश होकर मंच पर उपस्थित होना पड़ा। मैंने जो कविता उस गोष्ठी में सुनायी, बहुत पसन्द की गयी। सार्वजनिकरूप से यह मेरा प्रथम कविता-पाठ था। उस कविता की स्थायी पंक्ति इस प्रकार है—

बेबसी यह आँख के—
 मोती, यहाँ गिरना मना है।



आत्मकथा मोती बीए-कविता की खोज में



सहज भाव से यह क्रम चल रहा था। न मुझे कविता रचना करनी थी, न मुझे कवि होना था। मन के किसी कोने में एक विचित्र सुर सुराहट की अनुभूति हमेशा होती रहती थी। उसी को लेकर मैं एकान्त में उलझा रहता था। वह मेरा कोई था, मगर कौन इसका पता नहीं चल पाता था। उसी की तलाश थी, उसी के लिए बेचैनी थी। वही गाता था, वही रोता था। इधर मेरी निजी दशा भी बड़ी जटिल और कष्टकारक थी। सिवा परमपिता के कोई मेरा सहारा था नहीं। नाम भी दोनों फेकलिट्यों से शुल्क अदा न करने के कारण कट चुका था और मैं कविता रानी के दामन से जी जान से उलझने को मजबूर हो गया था। दुनिया में जब कोई सुनने वाला नहीं, तो कम से कम एक शैली तो ऐसी है पास जिससे अपनी मन की व्यथा कही जा सकती थी। मैंने बेचैन होकर तड़प कर उस शक्ति का आह्वान किया।

सजनि, यह आह्वान तेरा
मान में कुछ खो न बैठे
आज आकुल प्रान मेरा
सजनि यह आह्वान तेरा।

वेदना में चेतना खो
अचल मूर्च्छित सा पड़ा जो
श्रृंग उर से फूट निकला
एक कल कल गान तेरा
सजनि यह आह्वान तेरा।

संघर्ष, ठोकर, निराशा और वेदना यही पथ सम्बल था। इसी में जागना था, इसी में सोना था। इसी में गाना था इसी में रोना था। पढ़ने-लिखने से सहज ही अवकाश मिल चुका था। मालवीय जी महाराज का दरबार भी मुझ गरीब विद्यार्थी के लिए चुक गया था। वहाँ के पण्डे जी मूर्ति पूजक और आराधक बने थे। हाँ, अपनी गरीबी और असहायावस्था का मैं कृतज्ञ हूँ कि इसी के चलते मैं मालवीय जी महाराज की मोहिनी मंजुल मूर्ति का दर्शन अनेक बार कर सका था। कविता स्वयं कवि का दर्शन कर जो आत्मसुख प्राप्त कर रही थी वह अभ्यन्तर में कहीं अपनी जड़ जमा रहीथी।

इसी निराशा ने उर अन्तर में
स्मृति का दीप जलाया
इसी निराशा ने विरही को





प्रिय भवन दिखाया
आँखों में जल रही ज्योति बन
प्रिय पथ की अधियारी ।
मुझे निराशा प्राणों से भी प्यारी ।

वास्तविक मूर्तिपूजक वरदान से वंचित नहीं रहा। पण्डो का अवरोध प्रभु और प्रभु के भक्तों के बीच बाधक न बन सका। फीस नहीं माफ हुई, न सही। जो अलौकिक वस्तु वरदान मेंमुझे मिली उसी के सहारे मेरी जीवन यात्रा पूर्ण सफल रही। खोजने चला था फीस माफी और मिल गयी कविता। छात्र का आत्म सम्मान भी टूटने से बच गया। पूरी फीस चुकाकर युनिवर्सिटी की सर्वोच्च डिग्री सम्मान प्राप्त करने का गौरव भी प्राप्त कर लिया यानी कि एम ए हो गया। किन्तु धन्य है यह संघर्ष। बीए की डिग्री के तेज के समक्ष एम.ए. की उपाधि हमेशा नतमस्तक बनी रही। मोती बी ए नाम प्रसिद्ध होने लगा। गोष्ठियों में इसी नाम से मैं स्वीकारा जाने लगा। नाम मोती, डिग्री बी ए। एक कहानी हो गई।

कृष्णदेव प्रसाद गौड़ बेढब बनारसी के निवास स्थान पर प्रति सप्ताह प्रसाद परिषद की बैठक होती थी। अर्जुन भाई के साथ मैं नियमित रूप से इसमें सम्मिलित होता था। बाद में आगे चलकर इस परिषद की बैठक ठाकुर दिलीप नारायण सिंह के निवास स्थान पर होने लगी थी। नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में एक विराट कवि सम्मेलन आयोजित हुआ 1939 में। मैं भी अर्जुन भाई के साथ कवियों का दर्शन करने एवं उनकी वाणी का आनन्द लूटने गया था। मगर अर्जुन भाई ने मंच पर जाकर चुपके से अपने नाम के साथ मेरा नाम भी लिखवा दिया था। कविता पढ़ने वालों की सूची में। मुझे कुछ पता नहीं था। मैं निर्मल मन से वातावरण का मजा ले रहा था। मंच पर पण्डित श्री नारायण चतुर्वेदी अध्यक्ष के पद पर सुशोभित थे। बेढब जी संचालन कर रहे थे। हरिवंश राय बच्चन, पण्डित श्यामनारायण पाण्डेय और अन्य नामी कवियों से मंच जगमगा रहा था। पण्डाल में अपार भीड़ थी। इसी भीड़ में मैं भी आनंदार्थी बना हुआ था। नवोदित कवि प्रतिभाओं को पहले आहूत किया जा रहा था। इसी क्रम में मेरे नाम की घोषणा की गयी कि अब श्री मोती बी ए कविता पाठ करेंगे।

यह ऐलान सुनकर मुझको तो साँप सूँघ गया। अरे बाप, कहाँ यहविराट आयोजन और कहाँ मैं ? मैं मन ही मन अर्जुन भाई को कोसने लगा। मेरे कुछ परिचित मित्र ने अगल बगल से मुझ को छेड़ना शुरू किया। बगैर मंच पर गए राहत मिलने वाली थी नहीं। और भीड़ को ठेल-ठाल कर गिरता पड़ता मंच पर पहुँचा घबराया हुआ, डरा हुआ, दबा हुआ, सूखे होठ,





चटचटाती तालू, सटी जीभ। मंच के देवताओं ने प्रोत्साहित किया और मैंने शुष्क कण्ठ से कहा,- ‘एक गीत है जिसकी पहली पंक्ति है—‘सजनि यह आहन तेरा।’ स्वर तो मधुर था ही। (धी का लहू टेढ़ो-मानो। कविता दिव्य और पवित्र थी ही।) पहला छन्द पूरा होते होते मण्डप तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। गीत पर तालियों की गड़गड़ाहट। यह एक चमत्कार था। बच्चन जी ने मेरी पीठ थपथपायी। कविता पूरी होने पर एक और की माँग हुई। इस प्रकार मेरा यह प्रथम कवि सम्मेलन था। पहली बार माथे पर तिलक लगा।

पढ़ाई लिखाई छोड़कर एम ए का सपना भुलाकर अब काशी क्षेत्र में मैं मोती बी ए बनकर विचरण करने लगा। अर्जुन भाई के क्वार्टर पर नरिया लोज में निवास, उन्हीं के यहाँ भोजन। दिन भर काव्य चर्चा। इसी क्रम में शम्भूनाथ सिंह से मेरा परिचय हो गया। शम्भूनाथ सिंह का स्नेह-सूत्र बड़ा निराला है और उसमें एक विचित्र अपनापन है जो कभी पास और कभी दूर प्रतीत होता है मगर एकदम समाप्त नहीं होता। अब तो इन्हीं सम्बन्धों का मुझे सहारा था। मैंने निरुपाधिक रूप से अपने को इन्हीं सम्बन्धों के हवाले कर रखा था। थड़ाधड़ कविताएं रखी जाने लगीं।

मगर बिना पैसों के यह जीवनक्रम कब तक चलता। मेरे कवि भित्र भी तो मेरे ही समान असहाय थे। ये लोग जिस क्षीण डोर में बंधे थे वह उन्हीं का भार नहीं ढो पा रही थी। भित्रता किस सहारे चले। कविता लता को फैलने फलने के लिए एक ढूँठ चाहिए था। यहाँ सब लताएं ही लताएं थीं। इनमें ढूँठ कोई नहीं था। मजबूर होकर मैंने सन् 1939 के जनवरी में काशी नगरी को प्रणाम किया। विदा होने के पूर्व साप्ताहिक ‘आज’ के सम्पादक श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव और श्री राजवल्लभ सहाय से भेंट कर अपनी एक कविता ‘तूने कब हँसना सीखा है’ प्रकाशनार्थ देता आया था। उन्होंने यह कविता विचाराधीन रख ली और मैं लार रोड स्टेशन से उतरकर पैदल ही 7 मील चलकर अपने गाँव बरेजी आ गया।

गोबर पानी, घास-भूसा, खुरपी-कुदारी का जीवन शुरू। एक दिन तोरी के खेत में मैं अपनी बहिन शान्ति स्वर्गीया के साथ तोरी उखार रहा था। इतने में रामबली बाबा सतरांव से डाक लेकर मेरे पास आ पहुँचे। उन्होंने साप्ताहिक आज की प्रति मुझे दी। पत्रिका के मुख्यपृष्ठ पर प्रकाशित अपनी कविता और उसके नीचे अपना नाम देखकर जो खुशी हुई वह जाहिर कर पाना मुश्किल है। इसके बाद लगातार ही करीब करीब इस पत्रिका के मुख्यपृष्ठ पर मेरी कविताएं प्रकाशित होने लगीं।

काशी में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन इसीवर्ष आयोजित था। मोती बीए नाम स्थापित हो गया था। इसलिए मेरे पास भी काशी से आमन्त्रण पत्र पहुँचा। मैं इस पत्र से बड़ा ही प्रमुदित था और काशी जाकर इस समारोह में सम्मिलित होना चाहता था किन्तु खर्च





के लिए रूपये नहीं थे। मेरे पिताजी ने इसआमन्त्रण पत्रको देखा और वे परम संतुष्ट हुए। उन्होंने इस अधिवेशन में सम्मिलित होने की रायदी और अपनी आर्थिकतंगी बताते हुए केवल पांच रुपयों से मेरी मदद कर पाने की अपनी मजबूरी जाहिर की। उनका आशीर्वाद लेकर मैं काशी पहुँचा। पांच रुपयों में दो रु. खर्च हो गये थे। तीन रुपये पास में थे। काशी के उदीयमान कवियों के सम्बन्ध में मेरा एक लेख साप्ताहिक 'आज' में इस अवसर पर प्रकाशित हुआ था जिसकी बड़ी चर्चा थी। माखन लाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहन लाल द्विवेदी, श्याम नारायण पाण्डेय का जमाना था। मेरे कवि मित्र मेरे साथ थे। यह एक नयी दुनिया थी मेरे लिए। शम्भुनाथ सिंह ने इसी वर्ष इलाहाबाद युनिवर्सिटी से बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। अर्जुन भाई, गंगा रत्न पाण्डेय, दिलीप नारायण सिंह, शम्भुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, सागर सिंह, नामवर, त्रिलोचन आदि मित्रों के बीच रहते हुए काशी के साहित्यिक वातावरण का आनन्द आत्मा को प्रफुल्लित किए रहता था। मेरी कवितावृत्ति एक दिशा की ओर तेजी के साथ उड़ी जा रही थी।

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता ददा शचीन्द्रनाथ सान्याल उन्हीं दिनों 'अग्रगामी' नाम से हिन्दी दैनिक समाचार पत्र निकालने जा रहे थे। सान्याल साहब से शम्भुनाथ सिंह का परिचय था। उसके सम्पादकीय विभाग में शम्भुनाथ सिंह नियुक्त कर लिए गये थे। शम्भुनाथ की कोशिश से मैं भी सम्पादकीय विभाग में पचीस रुपये वेतन पर नियुक्त कर लिया गया। पत्रकारिता और कविता का जीवन समानान्तर चलने लगा। सुभाष चन्द्र बसु हम सभी के आदर्श थे। राष्ट्रीयता की भावना हम लोगों में सर्वदा तरंगित रहा करती थी। सान्याल साहब इसके प्रबल प्रेरक थे। स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों से प्रत्यक्ष संघर्ष के हम समर्थक थे।

कविता की खोज में हम पत्रकारिता और राष्ट्रीयता की दिशा में अग्रसर होने लगे। संतोष की बात है कि ये सभी परस्पर एक दूसरे के पूरक जैसे थे, विरोधी नहीं थे। एक से दूसरा भी सबल होता था। अभाव ही इन तीनों का खाद्य और पेट था। ये तीनों ही संघर्ष की अवस्था में जी सकते थे। अध्ययन का मार्ग विवश होकर छोड़ना पड़ा। पत्रकारिता ही जीवन का लक्ष्य तो नहीं बन जाएगी? अन्येरे में कुछ सूझ नहीं पड़ता था। जीवन की सभी पूर्ववर्ती अवस्थायें पूर्ववत् सक्रिय थीं। सुख-सन्तोष के भावों का जैसे कि स्थायी रूप से निःशेषीकरण हो गया था। पत्रकारिता फ्रंट पर थी, स्वतंत्रता एक सपना थी, कविता एक मजबूरी थी जो ठोकरों में जी रही थी। संघर्ष ही एक चाराथा हाफ कमीज पर जवाहर जैकेट, सिर पर गांधी टोपी, खादी का पाजामा, कोल्हापुरी चप्पल, रेखिया उठान जवान, गठीला फुर्तीला बदन। यही बाना था। जैसा परिवेश वैसी कविता। इन दिनों की कविताओं की एक आध बानगी-



आत्मकथा मोती बीए-कविता की खोज में



पागल सा मैं धूम रहा हूँ
 जगती के कण कण को अपना
 प्यार समझ के चूम रहा हूँ।

+ + +

जग से इसे छिपाऊँगा मैं
 घाव पुराना मेरा
 इसको बैठ कहीं सहलाऊँगा मैं।

+ + +

मैं निशिदिन गाया करता हूँ
 जाने उर के कितने छाले
 ऐसे सहलाया करता हूँ।

+ + +

आज मैं पथ धर चुका हूँ
 एक भीषण भावना विद्रोह की
 मैं भर चुका हूँ

+ + +

मैं जिस नौका पर बैठा हूँ
 वह नौका है आज किनारे।

+ + +

कौन सा विश्वास लाए
 लक्ष्य पर पहुँचे हुये को कौन
 नूतन आस लाए।

+ + +

तुम कौन कहाँ से आए
 मेरे इस शून्य निलय में जो धन
 बनकर घहराए
 झंझा के भैरव नर्तन
 मैं नाच रहे हो क्षण क्षण





किसी शिखी नृत्य पर ऐसे
ललचाए मन से धाए
तुम कौन, कहाँ से आए।

व्यक्ति, समाज, देश, संसार और सृष्टिपूर्ण अन्धकार से ग्रसित। हृदय व्यथा से और अभाव से परिपूर्ण, मतवाला मन, आनन्दी आत्मा। करे तैयार कोई रसायन। सबको मिलाने से जो भी वस्तु तैयार होगी वह अवश्य कविता होगी चाहे इसे महात्मा गांधी तैयार करें चाहे सुभाष चन्द्र बसु चाहे मोती बी ए या कोई भी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी। वह युग रचनाओं का था, कवियों-कविताओं का था, साहित्य साहित्यकारों का था, इसी युग में दबे पांव रोटी, कपड़ा और मकान की समस्याओं को लेकर प्रगतिवादी विचारधारा भी साहित्य के प्रकोष्ठ में पदार्पण कर चुकी थी। शम्भुनाथ सिंह, अमृत राय, नागर्जुन, त्रिलोचन, शिवदास सिंह चौहान, रामविलास शर्मा, शमशेर आदि यज्ञ में हुतासन तैयार कर रहे थे। पण्डित सोहनलालद्विवेदी का 'किसान', सुभद्रा कुमारी चौहानकी 'झांसी की रानी', भगवती चरण वर्मा की 'भैसागाड़ी' नागर्जुन का 'जो नहीं कर सके पूर्ण काम उनको प्रणाम' सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव का 'पिस रहे हो बैल से मजदूर' दिनकर का 'मेरे नगपति मेरे विशाल' प्रगतिवादी विचारधारा का पथ प्रशस्त करता जा रहा था। पन्त, प्रसाद, निराला, भैथिलीशरण गुप्त सबके केन्द्र में थे।

इस युग की प्रगतिवादी रचनाएं स्पष्ट और खुली अभिधा शैली में लिखी जाती थीं। रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकताओं को दार्शनिकता का आयात भी जारी था। हमारी दैनिक आवश्यकताएं युग की मांग थीं। हमारी स्वतंत्रता ही इस मांग की पूर्ति कर सकती थी। अतएव प्रगतिवादी भावनाएं परस्पर मिल खप गयी थीं। छायावादी कविताएं इस साहित्यिक स्वरूप कामेरूद्धण्ड बनी हुई थीं। प्रगतिवादी अंचलों में आयातित दार्शनिकता सरहदों पर अपना कुमुक सहेज रही थीं। छायावादी कविताओं का अस्तित्व समस्या बन चुका था। पं. सुमित्रानन्दन पन्त ने 'युगान्त' कर डाला। प्रसाद जी की 'कामायनी' महादेवी जी की 'यात्रा' और निराला जी की 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' ने छायावादी युग का विजयकेतु हिन्दी के साहित्य गगन में लहरा दिया था। बच्चन जी की 'मधुशाला' ने हिन्दी काव्य जगत में नयी सम्भावनाओं का द्वारखोल दिया था। मधुशाला, मधुकलश, निशा निमंत्रण और एकान्त संगीत ने छायावादी तत्व को सरल, सरस, सुवोध और मार्मिक बना दिया था। इस समय बच्चन जी टीवर्स ट्रेनिंग कालेज, कमच्छा (काशी) में बी टी का कोर्स पूरा कर रहे थे। अर्जुन भाई के साथ हम उनसे प्रायः मिल लिया करते थे। 'आज मुझसे बोल बादल' (निशा निमन्त्रण) हम लोगों की बड़ी प्रिय कविता थी। अपने ढंग से मैंने बच्चन जी को



आत्मकथा मोती बी.ए-कविता की खोज में



सुनाया था और बच्चन जी ने इसे अपनी शैली में हम लोगों को सुनाया था। हिंदी साहित्य के काव्य जगत में बड़ी सक्रियता थी। काव्य शक्ति में लोगों को बड़ा विश्वास था। मैं भी इसमें बहुत मगानऔर खोया खोया रहा करता था।

गोपाल सिंह 'नेपाली' इन्हीं दिनों पत्र-पत्रिकाओं और कवि सम्मेलनों के मंचों द्वारा बहुत लोकप्रिय हो उठे थे। हिन्दी जगत में सर्वत्र उनकी धूम थी। साप्ताहिक 'आज' के मुख्यपृष्ठों पर सदा मेरी कविताएं प्रकाशित होती थीं। एम.ए.की डिग्री प्राप्तकरने की लालसा मिट गई थी। इसलिए अपने नाम के आगे बी.ए. लिखा करता था। इस प्रकार मेरी कविताएं मोती बी ए नाम से पत्रिकाओं में छपती थीं। और यह नाम धीरे-धीरे लोकप्रिय होता जा रहा था। काशीनाथ उपाध्याय, जोहिन्दी संसार में 'बेधड़क बनारसी' के नाम से प्रख्यात हैं, मेरे सहपाठी थे बी ए को। ये 'अमर' उपनाम से पहले उद्बोधनात्मक कविताएं लिखा करते थे। बाद में उन्होंने हास्य और व्यंग्य की विधा को अपना लिया। मोती बी ए का नाम इतनी तेजी से साप्ताहिक आज के द्वारा फैलता और फलता फूलता जा रहा था कि सामान्य अथवा विशिष्ट सभी प्रकार के लोग इस नाम को जानने लग गये थे और काशी के साहित्यिक गगन में नवोदित तारों में मेरी भी गणना होने लगी थी। किंतु मेरे अनजाने ! कुछ हो इसका कोई पता नहीं था। मुझे तो आज भी यहीं ज्ञान है कि मुझे लोग नहीं जानते। पत्र-पत्रिकाओं में छपे नाम को कुछ लोग अपना हस्ताक्षर समझने लग जाते हैं। मुझे यह बीमारी कभी नहीं हुई। यह बड़ी घातक बीमारी है क्योंकि हस्ताक्षर छपे नाम तो होते नहीं और उनको हस्ताक्षर समझने के अम से वे छपे नाम भी नहीं रह जाते। दोनों एक दूसरे को लील जाते हैं।

अब मुझे काव्य गोष्ठियों में आनन्द मिलने लगा था। इन्हीं दिनों (६३६-४०) गया के गुलाब खण्डेलवाल काशी केसाहित्यिक बेत्र में 'बेढब' जी की कृपा से पूरे निखार के साथ प्रकट हुए। उनकी कविताएं श्रोता समूह पर चमत्कारिक प्रभाव डालती थीं। जनम जनम की अपनी कविता की भूख-प्यास इन काव्य गोष्ठियों के माध्यम से मैं शान्त करता रहता था। दिन-रात एक नशा सा मुझ पर छाया रहता था। 25 रुपये की नौकरी ने काशी में मुझे बहुत हरा-भरा कर रखा था। शम्भुनाथ का साथ हो जाने से मैं अब अर्जुन भाई पर विशेष भार बनकर लदा नहीं रहता था। कभी शम्भुनाथ सिंह के घर, कभी अर्जुन भाई के क्वार्टर पर रहते हुए पत्रकारिता, राष्ट्रीयता और साहित्यिकता की धारा में निर्बाध बहा करता था। इस समय तक नामवर सिंह और ठाकुर प्रसादसिंह का अवतरण नहीं हुआ था। शम्भुनाथ सिंह के साथ एक तेजस्वी उत्साही छात्रा जिसका नाम महेन्द्र था, प्रायः हम लोगों से मिलता रहता था। था तो वह बालक किन्तु प्रतिभा के साथ प्रकृति ने उसे कण्ठ भी खूब दिया था। शम्भुनाथ सिंह, महेन्द्र और मोती बी ए का एक गुट बन





गया और कवि सम्मेलनों तथा काव्य गोष्ठियों में यह त्रिगुट बहुत प्रशंसित और लोकप्रिय हो गया। कोई कवि सम्मेलन हो, इन तीनों का एक साथ रहना सम्मेलन की सफलता के लिए अनिवार्य हो जाता था। महेंद्र जी इस समय मुरादाबाद के किसी स्नातकोत्तर डिग्री कॉलेज में हिंदी विभाग के अध्यक्ष पद से अवकाश ग्रहण कर चुके होंगे।

किस वस्तु की खोज है या ना जानते हुए भी मैं जिस वस्तु को खोज रहा था वह मुझे मिलती जा रही थी किंतु मेरे मन में इसके प्रति सकर्धक चेतना का भाव नहीं बन पा रहा था। अगर मुझे इस समय यह अनुभव हो गया होता कि जिसे मैं खोज रहा था वह वस्तु यही है तो जिस समस्या का हल मैं आज तक नहीं कर पा रहा हूँ उसका हल उसी समय हो गया होता। अपनी अपनी समस्याओं का हल लेकर तमाम सारे लोग अपने अभिलाषाओं का खेत जोत कर उपलब्धियों का भरवाड बोते और काटते देखे जाते हैं। इन भाग्यवानों की सूची में मेरा नाम कभी भी नहीं लिखाजा सका।

इन दिनों काशी के साहित्यिक क्षेत्र में शम्भुनाथ सिंह का प्रभाव अधिक माना जाता था। मैं स्वयं उनकी कविताओं को उस समय की बुद्धि के अनुसार एक चमत्कार समझता था। गोष्ठियों में उनको बहुत आदर मिलता था। मुझको प्यार मिला करता था। आदर उनको अन्यों के समकक्ष रखता था, प्यार मुझे अन्यों के अधीन रखता था। मैं अपनी इस स्थिति से सन्तुष्ट रहता था। किन्तु शम्भुनाथ सिंह इससे भी आगे बढ़ना चाहते थे। अतः वे अपना त्वरित विकास चाहते थे। मैं अपने सत्कार के लिए व्यग्र था और वे अपने विकास के लिए क्योंकि वे समझते थे कि उनका सत्कार हो चुका है। मैं समझता था कि मेरा सत्कार कभी अधूरा है। शम्भुनाथ सिंह कभी विद्युत वेग से मेरी कविताओं के अधीन हो जाते थे और कभी उतने ही वेग से पृथक हो जाते थे। उनके आचरण की व्यवस्था आज तक मेरी समझ में नहीं आई। इसके विपरीत अर्जुन भाईसे पूर्व यदि शंभू नाथ सिंहसे मेरा परिचय हो गया होता तो निश्चय ही मेरी कविता मर गई होती। अर्जुन भाई ने अपने परिपोषण से मेरी कविताओं में पर्याप्त आत्मशक्ति भर दी थी। इसलिए कभी कभी शम्भुनाथ सिंह से बराबरी का दावा कर बैठता था और कभी उनको मीलों पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाता था और कभी वे ही मेरे लिए साहित्य गगन में एक दूर झिलमिलाते तारे के समान प्रतीत होते थे। सरयूप्रसाद चौबे से मैं मानवीय प्रयत्नों की सम्भावना का विस्तार प्राप्त करता था, गंगारत्न पाण्डेय से मैं अभावग्रस्त अवस्था से जूझते हुए भावपूर्ण अवस्था का ठोस धरातल प्राप्त करता था, अर्जुन भाई से अभिसिंचन और परिपोषण तथा शम्भुनाथ सिंह से घाम बतास, ऊँधी-अंधड़, धूल-धक्कड़ लेकर मसलता और परिपुष्टता प्राप्त करता था। कविताओं के ही कारण कभी-कभी शंभूनाथ सिंह में और





मुझ में वाक्युद्ध के उपरांत उग्र मारपीट की स्थिति आ जाती थी। मारपीट के तल्काल बाद ही विविध पश्चाताप की भावना कारुणिक परिस्थिति उत्पन्न कर देती थी और हम लोगों में पुनः मेलजोल हो जाया करता था। कविता को लेकर हम लोग की दशा तब तक इसी प्रकार ही रही जब तक हम एक दूसरे से दूर नहीं हुए। आज भी हम दूर नहीं हैं मगर पास भी नहीं हैं।

मेरे ऊपर आरोप था निराशावादी और पलायनवादी होने का। परिस्थितियों के कारण मैं निराशावादी था, स्वभाव और परिवेश के कारण मैं पलायनवादी था यदि मेरा कोई गिरोह या गोल होता तो मैं लड़ाकू हो जाता मगर मैंने समान रूप से सबको एक जाना। विभेद की स्थिति में मैं कभी आ ही नहीं सका कि जोड़ तोड़ करके गोल बनाता-बिगड़ता। भेदक और अभेदक दोनों मेरे लिए एक जैसे हैं। मैं कैसे एक से प्यार करूँ और दूसरे से घृणा। मैं क्योंन दोनों केयथार्थ पर आँसू बहाऊ और उनके एकत्व की कल्पना के गीत गाऊँ।

मुस्कुराए हसें ओस कण
बैठकर फूल की गोद में
खेल खेले किरण और पवन
मैं निहारा करूँ मोह में।

‘अग्रगामी’ दैनिक समाचार पत्र में सात आठ महीने सहायक सम्पादक का कार्य करने के बाद त्यागपत्र देकर मैंने एक नये सिरे से संघर्ष कर शम्भुनाथ सिंह के मूल्यवान सहयोग और अर्जुन भाई की कृपा के बल पर विकटाति-विकट परिस्थितियों को पार कर आखिर सन् 1941 में हिन्दू युनिवर्सिटी से एम ए की उपाधि प्राप्त कर ही ली। ससम्मान ‘अग्रगामी’ छोड़कर दैनिक ‘आज’ में सहायक सम्पादक का कार्य भी स्वीकार कर ही लिया था। सन् 1941 की मई के महीने में शंभुनाथ सिंह के बल पर बिहार (छोटा नागपुर) में आदिवासियों के सांस्कृतिक उत्थान के निमित्त स्थापित रांची से आठ मील दक्षिण सेवाश्रम तिरिल में कार्यरत हुआ। शम्भुनाथ सिंह के साथऔरभी चार-पांच सहयोगी बन्धु थे। कविता काशी से चलकर तिरिल में पहुँच गयी।

कविता के क्षेत्र में उत्तरने के पहले प्रकाशन और प्रचार की समुचित व्यवस्था चतुर कविगण किए रहते हैं। कवि सम्मेलनों में प्रतिद्वन्द्वी कवि को उखाड़ने के लिए हूटरों का और स्वयं को जमाने के लिए ताली पीटने वाले, वाह-वाही करने वाले सूटरों का एक खास मजमा बहुत जरूरी है। पत्र-पत्रिकाओं में छपने के लिए अकेले नहीं वर्ग में होना अनिवार्य है। महावीर प्रसाद द्विवेदी या मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव जैसों की कुर्सियाँ एक जमाने से खाली पड़ी हैं। अपने नाम के पीछे भीड़खड़ी कर लेने के बाद प्रकाशक ही प्रकाशक मिलेंगे जिनमें से इच्छानुसार किसी का चयन





आत्मकथा मोती बीए-कविता की खोज में



कर लिया जा सकता है। सन् 1939-40 में मुझे भी पुस्तक छपास का रोग लगा। बच्चन जी के प्रति मेरे मन में असीम श्रद्धा थी। सोचा कि जब मैं बच्चन जी के पास पहुँच कर उनकी प्रकाशन संस्था 'सुषमा की कुंज' से अपनी कविता पुस्तक के प्रकाशन का प्रस्ताव करूँगा तो वे खुशहो जायेंगे और मेरी पुस्तक छप जायेगी। बड़ी ही खूबसूरतपाण्डुलिपि तैयार की, स्वयं उसकी भूमिका लिखी और बच्चन जी से भी भूमिका लिखवाने का विचारस्थर किया। यह सबलेकर बच्चनजी के पास इलाहाबाद पहुँच गया। बच्चन जी ने बड़े ध्यान से मेरी बात सुनी। मुझे कहने का पूरा अवसर दिया। प्रकाशन की व्यावहारिक कठिनाई और अपनी विवशता प्रकट की। कविता और उसके प्रकाशक के बीच के गहरे अन्तराल का बोध कराया और बड़े ही प्रेम से मेरी कविता पुस्तक 'लतिका' की उन्होंने भूमिका लिख दी।

मैं कृतार्थ भी हुआ और सनाथ भी। प्रकाशन सम्बन्धी यथार्थ बोध से मैं कृतार्थ था और भूमिका में उन्होंने अपने जो विचार कविता के सम्बन्ध में दिए उससे मैं सनाथ हुआ। कविता क्यों लिखी जाए और उसके होने की सार्थकता अथवा उपयोगिता का क्या स्वरूप है इसका मुझे कुछ कुछ ज्ञान हुआ। अब तक मैं अन्देरे में भटक रहा था किन्तु उनकी भूमिका में लिखे गये विचार से मैं प्रकाश में आ गया। कविता को बच्चन जी ने आत्म विकास का एक प्रबल माध्यम और जीवन की दीक्षा में इसको उन्होंने एक सशक्त साधन बतलाया। साथ ही यह भी उन्होंने कहा कि जो जितना ही पूर्ण कविहोता है वह उतना ही पूर्ण मनुष्य होता है। पूर्णता की ओर अग्रसर होने का सबको अधिकार है। कवि कविता बनाता है यह एक सामान्य तथ्य है किन्तु सत्य यह है कि कविता ही कवि को बनाती है। मेरी कविता भी ऐसी ही है। 'मोहि तो मेरे कवित्त बनावत' (घनानन्द)।

बच्चन जी के इस विचार का मुझ पर जादू का असर हुआ। छपास का मेरा रोग हमेशा के लिए समाप्त हो गया। प्रचार का भूत जो भागा तो आज तक वह फिर कभी भी मेरे समक्ष प्रस्तुत नहीं हुआ। कविता के द्वारा पूर्ण मनुष्य बनने की डगर को खोजने में प्रवृत्त हुआ। यह नयी खोजही और इसके प्रति मेरी लग्नशीलता ही मुझको कविता के गहरे अन्तराल में उत्तारने लगी। रास्ते की विकट कठिनाईयां मुझे आनन्दित करने लगीं। मुझको पत्र-पत्रिकाओं के स्तम्भों में चमकने की व्यग्रता कभी नहीं हुई। कवि सम्मेलनों के मंचों पर श्रोताओं को मुग्ध करने की लालसा विदा हो गयी। पहले मैं तो मन्त्रमुग्ध हो लूँ फिर दुनिया को रिझा लिया जायेगा। कविता की खोज का नवीन प्रयत्न यहाँसे प्रारम्भ हुआ।

कविता रचना की इस अवस्था से उठकर सन् 1946 में मैंने 'मधु-तुष्णा' में यह कविता लिखी-
जो भी जी में आता करता।



आत्मकथा मोती बीए-कविता की खोज में



विद्युत की स्वर्गिक आभा में
जीवन पथ अनुसन्धान किया
ऊँचा-नीचा, खाई खन्दक
इस पर न तनिक भी ध्यान दिया
दृग वन्द किये बढ़ता जाता-
निःसंशयमन, न तनिक डरता।
जो भी जी में आता, करता।

+ + +

झंकोरों में पड़ा जीवन तुम्हारा
गीत गाता है।

(कवि भावना मानव, 1947)

+ + +

कविता में बहते आँसू की धारा
गंगा की धारा है,
बस तेरा एक सहारा है।

(कवि और कविता, 1947)

गाथा तो आत्म विकास के द्वारा कविता के माध्यम से मानवता की दिशा में अग्रसर होने की प्रबल प्रेरणा ही अपना काम कर रही थी। कविता का स्वाद पा जाने पर प्रकाशन और प्रचार की लालसा और वासना स्वतः समाप्त हो गई। इसके लिए मैं बच्चन जी के दीक्षा मंत्र का कृतज्ञ हूं।

सन् 1972 के 15 नवम्बर को बच्चन जी ने मेरे द्वारा भेजे गये एक पत्र के उत्तर में लिखा- ‘जमाना देखते देखते खमानियत से वास्तविकता की ओर झुक गया। खैर, वास्तविकता से फिर खमानियत की ओर आयेगा। आप लोगों को आकर्षित करेंगे।’

बच्चन जी ने ‘एकान्त संगीत’ में लिखा है-

‘अकेला मानव आज खड़ा है
सूने नभ, कठोर पृथ्वी का ले आधार अड़ा है।’

यह मानव किसी गहरे संघर्षरत ‘महाप्राण’ का प्रतीक है। प्रत्यक्षतः उसका आधार दुर्बल प्रतीत होता है किन्तु उसका बोध ही दुर्बल है, आधार तो वास्तव में पृथ्वी और नभ का ही है। खमानियत और एडवेंचर की प्रवृत्ति यदि अन्य प्रकार से प्रभावित न हो जाए तो यही ‘कठोर पृथ्वी’





और 'सूने नभ' की उद्भावना बसन्त लाती है, फूलखिलाती है, फल प्रदान करती है, रसवर्षण करती है। सूने नभ का वरदान इसी कठोर पृथ्वी पर नित नये निर्माण करता है जिसको हम वास्तविकताके झूले में झुलाते रहते हैं। जीवन और प्रकृति के बीच यह रूमानियत और एडवेंचर का वेग कभी चुकता नहीं है और जो कवि, कलाकार इसमें एकात्म सम्बन्ध की स्थापना कर पाते हैं वे हमेशा रोमान्टिक और एडवेंचरस बने रहते हैं। उनका जटिल से जटिल संघर्ष, उनका कठिन से कठिन अनुभव और उनही असहा वेदना भी उन्हें तरो-ताजा रखती है। प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर, में व्यक्तविद्रोह की भावना अथवा 'जुए के नीचे गर्दन डाल,' की वास्तविकता ने रूमानियत की दिशा को स्वयं वास्तविकता की ओर मोड़ दिया था। यद्यपि बच्चन जी ने 'जग बदलेगा किन्तु न जीवन' में रूमानियत की शाश्वतता के संघर्ष की मांगलिक दिशा का संकेत कर दिया था। जमाना रूमानियत की ओर आए न आए, इससे क्या होता है। रूमानियत अपनी जगह पर है। जमाना गलत तरीके से इससे टकराते रहने को मजबूर ही रहेगा।

अव्यक्त को व्यक्त करना अंश को पूर्ण से सम्बन्धित करना, ज्ञात से अज्ञात की दिशा में अग्रसर होना यह सर्वदा से रूमानी रहा है और यह सर्वदा रूमानी रहेगा। वास्तविकता इसी रूमानियत पर सर्वदा निर्भर रहने को बाध्य है। वास्तविकता के सीमित धेरे से उठाकर यही रूमानियत वास्तविकता के व्यापक धरातल पर हमें रखती है। यह किया बिना रोमान्स और एडवेंचर के सम्बन्ध नहीं है। रोमान्स और एडवेंचर तभी खत्म होगा जब हम मानव अपने को पूर्ण मान लें। अपने को पूर्ण मानने के अभ्र से पुनः रूमानियत अंकुरित हो जाएगी और एक न एक दिन यह गुर्थी सुलझकर रहेगी।

यथार्थवादी कविता, युग की और आवश्यकताओं की कविता, मांग और पूर्ति की कविता, हड़ताल, आन्दोलन, पथराव की कविता अपना उद्देश्य पूर्ण कर लेने पर पुनः असंतोष की अगली किश्त से उत्पन्न होकर दूसरी किश्त की प्रतीक्षा तक जिजीविषा की कामना लेकर मरती है। यह सुखद आश्चर्य बाइबिल के 'कन्फेशन' के समान लग रहा है कि वे ही लोग जिन्होंने अपने अधकचरे जोश के क्षणों में रूमानियत से पहलवानी की, अब होश ठिकाने आ जाने पर जीवन के शिथिल क्षणों में रूमानियत से माफी मांग रहे हैं। यह स्थिति भी कम रोमान्टिक नहीं है। पन्त जी ने लोकायतन के बहुत पहले 'युगान्त' कर डाला।

प्रत्येक अंश का पूर्ण होता है। पूर्ण अंशों के अभाव में अकल्पित है। पूर्ण मनुष्य एक बहुतउलझा तथ्य है। पूर्णता की बात तो अलग है, उसके साथ लगी उलझनों के जाल से होकर निकलना स्वयंमें एक धने जंगल से दूसरे बीहड़ जंगल में प्रवेश करना है। ऐसी स्थिति में वास्तविकता और रूमानियत की सहज कल्पना कोई सहज साधक ही कर सकता है। बच्चन जी ने अपने इसी पत्र



आत्मकथा मोती बीए-कविता की खोज में



मैं मेरे सम्बन्ध में एक पंक्ति लिखी है 'कवि भावना मानव' को पढ़ने के बाद-'इस सरल शैली ने और कुछ भी किया हो आप को तो सरल बना दिया है। सरलता बड़ी साधना की देन है। आपको संतुष्ट होना चाहिए।'

कविता को सरल, सहज और सरस बनाने का काम बच्चन जी ने उस युग में किया था जब प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की कविताएं अच्छी तो लगती थीं किन्तु बोध में नहीं उत्तरती थीं। उनकी व्याख्या करने एवं अर्थ स्पष्ट करने में बहुत समझदार लोग भी शिव धनुष तोड़ने के प्रतिद्वन्द्वियों की स्थिति में पहुंच जाते थे। यही कारण है कि उपहास स्वरूप इन कविताओं को छायावादी या रहस्यवादी कहा जाने लगा जिसकी प्रतिक्रिया में प्रगतिवादी और यथार्थवादी कविताओं का जन्म हुआ। ऐसे बीहड़ युग में बच्चन जी ने मधुबाला, मधुशाला, मधुकलश, निशा निमंत्रण, एकान्त संगीत की रचना कर उद्बोधन युग की अभिव्यक्तियों को छायावादी तथ्यों से भर दिया। साधारणीकरण का एक विचित्रा युग बच्चन जी से शुरू हुआ। उन्होंने अपने पत्र में स्वयं इसी तथ्य को उजागर किया है। इन पंक्तियों में मेरी बात कम अपने बात ही विशेष उन्होंने लिखी है।

सेवाश्रम तिरिल का वातावरण जंगल, पहाड़, नदी, उपत्यका, चतुर्दिक व्याप्त नीरवता, अखण्ड शान्ति का साम्राज्य। कविता लता इस वातावरण में लहरा उठी। नियमित और अनुशासित दैनिक जीवन क्रम में कठोर शारीरिक और बौद्धिक परिश्रम ने नये नये सपनों को मूर्त रूप दिया। कल्पना शक्ति को पंख मारने का यहां पर्याप्त अवसर मिला। आदिवासी छात्रों को पढ़ाने के बाद जो समय शेष रहता था उसमें कविता रचना और अध्ययन मनन चिन्तन का प्रवाह निर्बाध जारी था। शम्भुनाथ सिंह से कभी कभी मैं अपनी कविताएं दिखला लिया करता था। वे कभी उनकी प्रशंसा करते थे तथा कभी कटु आलोचना। एक विशेष बात शम्भुनाथ सिंहकी यह थी कि जिन कविताओं को अपनी विशेष मनःस्थिति में वे कटु आलोचना करते थे उन्हीं कविताओं की अपनी बदली हुई भिन्न मनःस्थिति में अत्यधिक सराहना भी करते थे। इससे मैं उलझन में पड़ जाताथा कि कौन सी कविता अच्छी है और कौन सी बुरी। चूंकि मेरी कविताएं मेरी आत्मा की वाणी थीं इसीलिए मैं शम्भुनाथ सिंह की मानसिक अवस्था को ही इस प्रशंसा या आलोचना के लिए उत्तरदायी मानता और अपनी कविताओं को इससे सर्वथा मुक्त समझता था। सेवाश्रम तिरिल में शंभुनाथ सिंह पेट के मरीज हो गये थे। कुछ ही महीनों में वे त्यागपत्र देकर काशी वापस आ गए। मैं फरवरी 1942 में तिरील से भरपूर कविताएं लेकर अपने घर और घर से पुनः काशी आ गया। स्थिति इस समय ऐसी हो गयी थी कि अब तक मैं कविताएं लिखा करता था, अब स्वयं कविताएं मुझे लिखने लग गईं। अपने तिरील निवास के आठ नौ महीने में मेरी कविताएं रोमाण्टिक और एडवेंचरस हो गयी थीं। स्वचालित यान के





के समान ये मुझे प्रत्येक क्षण गतिशील रखने लगीं। अब मैं कविताओं में अपने जीवन की शान्ति ढूँढ़ने लग गया। उन्हीं में जीने मरने लगा।

कविता जीवन संगिनी होने के लिए बेचैन थी किन्तु मैं सोचता था कि इसे लेकर मैं जाऊँ कहाँ ? कविता का प्रतिपाद्य क्या हो ? किस उद्देश्य की निमित्तबने मेरी कविता ? यह पं.श्यामनारायण पाण्डेय की 'हल्दीघाटी' बने अथवा दिनकर जी का 'हुँकार' या बच्चन जी का 'एकान्त संगीत'? कभी कविता महादेवी जी की ओर भागती दिख पड़ती तो कभी निराला जी की ओर। कविता आत्माभिव्यक्ति के हेतु है या वाह्याभिव्यक्ति के ? यदि मेरी कविता मेरा प्रतिनिधित्व न करे तो उसकी परदेश यात्रा का अर्थ ही क्या हुआ ? मैं अपनी कविता को लेकर बड़े झमेले में था। मुझे झमेले में पड़ा देख मेरी कविता मुझसे कुठित रहने लगी। यहीं से कविता की रहस्यानुभूति की क्रया आरम्भ हो गयी। कविता रूठती गई और मैं उसे मनाता गया। कविता की खोज के वास्तविक प्रयत्न ने ऐडवेचर का रूप धारण कर लिया। अब मुझे किसी भित्र की, किसी की प्रशंसा या निन्दा की कोई जखरतनहीं रह गई। मैं और मेरा ऐडवेचर कविता को खोज निकालने के लिए पूर्ण समर्थ थे। अर्जुन भाई से यदा-कदा भेट हो जाया करती थी। शंभूनाथ सिंह के साथ हमेशा रहा करता था किंतु अब उनको बड़ी ललक से कविताएं नहीं सुनाता था। पटना से 'आर्यावर्त' दैनिक समाचार पत्रा पं दिनेश दत्त ज्ञा निकालते थे। 9 अगस्त 1942 तक वहां सम्पादकीय विभाग में रहा। सन् 42 के आन्दोलन में भाग कर अपने गांव आया। मैं आन्दोलनकारी था। अपने गांव भी नहीं रह पाया। पुनः काशी गया। दोतीन महीने म्युनिसिपल हाई स्कूल में अध्यापन कार्य किया। एक डेढ़ महीने लंका पर सलेमगढ़ स्टेट (दिवरिया) के राजा साहब के यहाँ उनके पुत्रों का गार्जियन ट्र्यूटर रहा, साहित्यरत्न की परीक्षा दी। हिन्दी दैनिक 'संसार' में पुनः सहायक संपादक हुआ। आन्दोलन में भाग लेने के कारण डॉ स्वामीनाथ सिंह के साथ गिरफ्तार किया गया और सेन्ट्रल जेल में नजरबन्द कर लिया गया। इनसभी अवस्थाओं में कविता ने कभी मेरा साथ नहीं छोड़ा। वह रुठी थी जखर मगरमेरे पीछे लगी रहती थी। आन्दोलित अवस्थाओं में भी मैं प्राणपण से उसकी मनुहार करने में कभी चूकता नहीं था। मगर वह हठीली मानती नहीं थी।

यह स्थिति भी अन्ततः समाप्त हुई। टीचर्स ट्रेनिंग कालेज तथा लाहौर और बम्बई के गन्धर्वलोक में रहते हुए भी अन्य सभी कार्य दत्तचित्त से और मनोयोग से करते हुए मैं कविता के पाषाण हृदय को पिघलाने में सफल हो गया और मुझे विश्वास हो गया कि मेरी जीवनरक्षामेरीकविता ही करेगी। कविता का यह रोमांस और ऐडवेचर यह मानते हुए कि अखण्ड है, अनन्त है, अनादि है, ? अजन्म है मेरे लिए कोई अर्थ नहीं रखता। कविता लोक की अपनी क्षुद्र यात्रा में





आत्मकथा मोती बीए-कविता की खोज में



ही सही मैंने इसके गहरे रहस्यों के भेदन का अनुभव प्राप्त किया। (फिल्म संसार ;गन्धर्व लोक) छोड़कर अपने गांव के निकट बाबा राघवदास के आश्रम में श्रीकृष्ण इंटरकालेज का साधारण प्रवक्ता होकर रहने के गौरव में मैं अपनी कविता की महिमामयी विभूति से अनजान नहीं हूँ। अगर कविता ने मेरा साथ न दिया होता तो बम्बई जाते जाते रास्ते में ही हार्ट फेल हो गया होता और तब मैं अपने असंख्य मित्रों एवं सुपरिचितों के इस प्रश्न का उत्तर देने योग्य जीवित न बचा होता कि आपने बम्बई क्यों छोड़ दिया ? बरहज ने भी काशी, तिरिल, लाहौर, बम्बई के समान ही मुझे कविताके मार्ग पर और भी अधिक आगे बढ़ाया।

आज हिन्दी कविता इतनी दूर आगे निकल गई है कि दृष्टि से ओझल होती हुई सी प्रतीत होने लगी है। उसके अस्तित्व में ही संदेह उत्पन्न हो गया है। उसके स्वरूप की परस्पर विरोधी विभिन्न व्याख्याओं से कोलाहल और हलचल मची हुई है। उसको सही ढंग से समझने की आवश्कता का अनुभव किया जाने लगा है। उसकी कोई एक परिभाषा नहीं बन पा रही है। कविता के लक्षणों का यथार्थवादी ज्ञान होना तो उसकी सच्ची परिभाषा बन जाती है और यदि उसकी सही परिभाषा मिल जाती तो उसके वास्तविक लक्षणों का सही ज्ञान होजाता। ऐसा लगता है कि युगसे कविता ही समाप्त हो गयी है और अन्धों के हाथी दर्शन की भाँतिकविता के बिखरे विभिन्न अंगों को ही आदर्श कविता समझा जाने लगा है। मुझे इस बात से सन्तोष है कि खड़ी बोली हिन्दी, मातृभाषा भोजपुरी, अर्जित भाषा अंग्रेजी अथवा उर्दू में, अनुवाद हो या मौलिक रचना, सभी में कविता के अन्तस्सौन्दर्य का समान दर्शन होता है। अर्जुन भाई तो स्वर्ग में हैं। शम्भुनाथ सिंह काशी विद्यार्पीठ से अवकाशप्राप्तकर चुके हैं। गंगारल पाण्डेय ने भी कविता रचना धर्म का निर्वाह किया। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय से ऊँचे पद पर कार्य करते हुए अवकाश ग्रहण किया, पं. सरजू प्रसाद चौबे ने भी अभिलाषित फल प्राप्त कर ही लिया। कविता के खोज का मेरा एडवेंचर तो समाप्त है लेकिन मेरा मन कविता से अभी नहीं भरा और मेरा ख्याल है कि कविता भी मेरे बारे में कुछ ऐसा ही सोचती है अन्यथा मेरी ऐसी दशा ही क्यों होती ?





जीवन को दीक्षित करने में कविता का बड़ा हाथ है। कविता आत्म विकास का साधन है। कविता मनुष्य को पूर्णता की दिशा में अग्रसर करती है। कविता ही कवि बनाती है। मैं धीरेधीरे इन बातों के मर्म में अनजाने पैठा जा रहा था। परिस्थितियों के दबाव के कारण मैं अन्तर्मुखी होने के कारण अनुभूति और वेदना का धनी हो रहा था। सत्य का करुण साक्षात्कार वेदना तथा संवेदनशीलता को और तीखा एवं गहरा बनाता जा रहा था। जीवन में होने वाली समस्त अनुकूल प्रतिकूल घटनाएं अभिव्यक्ति की छटपटाहट में कविता का रूप धारण करती जा रही थीं। दिशाएं थीं किन्तु उन तक पहुंच पाने की दशाएं नहीं थीं। व्यग्रता अन्तर्मन्थन कर रही थी। जीवित रहने के लिए इन अवस्थाओं की अभिव्यक्तिअनिवार्य थी जो मात्र रोने गाने से ही सम्भव थी। इसीलिए बच्चनजी की कविताएं मुझे बहुत प्रिय थीं। एम.ए. (इतिहास) और बीटी करने के समय (1943-44) तक इसी नद प्रवाह में पड़ा हुआ था। बच्चन जी की कविताएं विश्वव्य अन्तरात्मा पर मधु अनुलेपन करती थीं। स्वर सुरीला था। हृदय वेदनाओं से भरपूर था। संघर्षजनित ठोकरों से तन-मन जर्जर हो रहा था। एकमात्र सहारा बच्चनजी की कवितायें थीं जिन्हें मैं प्रायः गाया करता था-

रो तूं अक्षर अक्षर में ही
रो तूं गीतों के स्वर में ही
शान्त किसी दुखिया का मन हो
जिसको सूनेपन में गाकर
क्यों रोता है जड़ तकियों पर

+ + +

सुरीले कंठों का अपमान
जगत में कर सकता है कौन
स्वयं ही प्रकृति उठी है बोल
विदा कर अपना विर ब्रत मौन

+ + +

करे कोई निन्दा दिन-रात
सुयश का पीटे कोई ढोल
किए अपने कानों को बन्द
रही बुलबुल डालों पर डोल।





प्रस्तुत पंक्तियाँ लिखते समय मेरी आयु इकहत्तर वर्ष (1990) है। कविता के प्रति आकर्षण सन् 1936 में सत्रह वर्ष की आयु में हुआ था। यह सम्पूर्ण समय कविता देवी के पूजन-अर्चन में ही बीत गया। शेष भी इसी में बीतना है। लेखनी कभी विराम नहीं पा सकी, मनोदशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सामाजिक और आर्थिक पक्ष पर मेरा संघर्ष ज्यों का त्यों है। तन मन ठोकरों से आज भी पूर्ववत जर्जर है। अधोलिखित स्वरचित एक मुक्तक सफाई में प्रस्तुत है-

हाले दिल ऐ मेहरबान मत पूछिए
हम तजुरबात के हैं सताए हुए
यह हँसी है जहर की बुझाई हुई
ये ठहाके सभी चोट खाए हुए।
+ + +
इन हसीनों से पूछे कोई
यह वफा लेके मैं क्या करूँ
दर्द में जब मजा मिल गया
यह दवा लेके मैं क्या करूँ।

इस पृष्ठभूमि में संघर्ष का स्वरूप जान लेना जरूरी है। अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्थित करने का संघर्ष, विश्वविद्यालय की सर्वश्रेष्ठ शैक्षणिक उपाधि प्राप्त करने का संघर्ष, जबकि इसके निमित्त साधनों का पूर्ण अभाव था। घर-परिवार, माता-पिता, चाचा-चाची, भाई-बहन, पत्नी-सन्तानि, खेती-बारी, साहु-महाजन का ऋण अदा करने का संघर्ष, काशी में रहने के लिए आवास-भोजनादि आवश्यकताओं का संघर्ष ही मेरे जैसे अल्प वयस्क कच्ची उम्र के युवक के कमजोर कन्धों पर दुर्वह भार बनकर रोने-गाने, दर दर मारे मारे फिरते रहने को बाध्य किए रहता था। इन दिनों यही हमारा रोमांस था जो दिनानुदिन गहराता जा रहा था। उम्र के लेहाज से यह रोमांस कोई भी दिशा ग्रहण कर सकता था। मेरे जीवन संघर्ष का रूप क्या होगा, इसकी कल्पना भयावह थी। देश काल की गतिविधि से पूर्णतः सुभिज्ञ रहने के कारण मन कभी कभी विद्रोही हो उठता था। निर्धनता के कारण यह गति मेरी बनी थी। इसलिए अमीरी-गरीबी के प्रश्न पर मैं क्रान्तिकारी परिवर्तन की बात सोचा करता था और राष्ट्रीयता की लहर को युगर्धर्म समझकर चूमता रहता था और कभीकभी इसमें फंस भी जाया करता था।

नौकरी न मिलने के कारण गुलाम मानसिकता का कभी शिकार न हुआ। हृदय के आन्तरिक प्रेम के कारण व्यवहार या लेखन में मैंकभी मानवता के विरुद्ध हुआ नहीं। सभी को





मैं अपने जैसा समझता था। कूरता का भाव मन में कभी उभरा नहीं, महात्मा गाँधी के विचारों के कारण। मैं अहिंसक सत्याग्रही के रूप में ही अपने को सुरक्षित समझता था। वेदना और करुणा की बाँह थाम मैं कविता के प्रकोष्ठ में प्रविष्ट हुआ और उस देवी ने मुझे बड़े आदर के साथ अपने महल में एक कक्ष निर्धारित कर दिया। यही मेरा स्वर्ण मन्दिर था जिसमें रहते हुवे मैं मानवता के गीत गाता रहा जो मेरी अनुभूति थी, वही कविता देवी का प्रतिनिधित्व करती रही। आज भी मेरी यही स्थिति है।

‘गीत जीवन का सहारा’।

गरीबी का एकमात्र सहारा ईश्वर है। सभी गरीब ईश्वर को मानते हैं। बहके या बहकाये गरीब ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करते। मैं इस प्रदूषणसे सर्वथा दूर था। बेचारा गरीब अपनी बात ईश्वर से भी न कहे तो किससे कहे। कूर और हत्यारा बन कर अपराधी जीवन जिये या स्वयं को मार डाले। भगवान् ऐसे ही संशयशील कवियों का सर्वस्व होता है। अब ऐसे में कवि अगर ‘छायावादी’ नहीं होता तो क्या जनवादी या नवगीत या नयी कवितावादी होगा? क्या छायावाद मानवता का प्रेमी नहीं हो सकता?

जब तक जनवाद के नाम पर खूनी वर्ग संघर्ष में मानवता की निर्मम हत्या न हो जाये तब तक काव्ययात्रा गंवारू, स्त्रैण और भद्रेशी ही मानी जायेगी। मेरा वह संशय स्थायी हो गया है। मैंने मानवता और जनवादिता में कोई अन्तर कभी नहीं पाया। सर्वत्र शब्दता है और सर्वत्र प्रदूषण है। यह मात्र संस्कारजनित है जो केवल वर्णाश्रम धर्म के अनुसार चरितार्थ होता है। मेरे जीवन का आरम्भ ही ऐसा था। उसमें आज तक कभी बदलाव आया नहीं। मैं पैसे की राह कभी गुजरा नहीं। अभावों के बीच भावों की निधियों को मैंने कभी गिरवी रखकर देह पूजा नहीं की। मेरे अन्तरात्मा में मीरा, गोस्वामी, सूरदास, रहीम, नरोत्तम, बिहारी, रसखान, घनानन्द, गिरधर भारतेन्दु, रत्नाकर, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण, पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, सोहनलाल, सुभद्रा कुमारी चौहान, श्यामनारायण पाण्डेय, माखनलाल चतुर्वेदी, गोपाल सिंह ‘नेपाली’, बच्चन, दिनकर की वाणी, बीना की सुमधुर गूँज बनी रही। मेरा मन भंवरा सदा इन्हीं फूलों पर मंडराया रहता है। मैंने अलग अलग लेकर इनको सन्दर्भरहित, अप्रासारित, चुका हुआ पुनः मूल्यांकन की दृष्टि से कभी नापा नहीं। तराजू पर इनको कभी चढ़ाया नहीं। इनके आसन को कभी अपवित्रा नहीं किया, यही मेरी कमी है और यही मेरा दोष।

सन् 1944 तक काशी में रहते हुए मई में लाहौर पंचोली आर्ट पिक्चर में गीतकार के पद पर नियुक्त हुआ। मनोनुकूल काम और पद मिलने के कारण मैंने अपनी क्षमता,





योग्यता और भावावेग को कविता रूपी सुधा पान में पूर्णतः लगा दिया। रूप भार से लदी तूं चली, मैं प्यार चाहता हूँ, तुम याद आ रही हो, मैं आज जा रहा हूँ, मैं गीत क्या सुनाऊँ, कोई तो मुझको प्यार करे, इतना तो याद रहेगा ही, क्या सच करती हो प्यार मुझे, तुम न अगर होगी तो क्या था, तुमने दिया जलाया होगा—जैसे लोकप्रिय गीत लिख चुका था, गा चुका था, सुना चुका था। इन्हीं गीतमय भावनाओं का स्रोत फूटकर धारा के रूप में प्रवाहित, आलोकित एवं तरंगित हो चुका था। दर्द की मिठास से भरपूर, सुरीला स्वर, मोहक स्वरूप, पाम्ही भीगती जवानी, फिल्मी ग्लैमर मुझे हाथों हाथ लिए रहता था। अपने अभिन्न सखा भगवान प्रसाद त्रिपाठी के आग्रह पर बार बार जम्मू की यात्रा पर जाता और कविताओं में दिन-रात एक किए रहता था। लाहौर के वातावरण में गीतों के सागर में गीतकार बनकर खूब मोती बटोर रहा था। मैं काव्यधारा में बेसुध बहता था और काव्यधारा मुझे अपनी ओजस्विता में बहाए लिए चली जाती थी। मैं आत्मसुख लूट रहा था। दुनिया तो खुद अपने आप रंग-रंगीली थी। प्रगतिशील विचारधारा से तो मैं काशी में रहते हुए शिवदान सिंह चौहान, रामविलास शर्मा, शमशेर, त्रिलोचन, शम्भूनाथ सिंह, अमृत राय जैसे पराक्रमी सम्भावनाओं के प्रतीकों से आप्यायित हो चुका था। शिवमंगल सिंह सुमन, जानकी वल्लभ शास्त्री जैसे दिग्गजों के समीप रहकर कविता की अन्तर छवि को मैं बहुत कुछ देख सुन चुका था। बच्चन जी का विजयकेतु मैं फहरा ही चुका था। आत्मविश्वास बढ़ता जा रहा था। मैं उपरोक्त किन्हीं भी तत्वों से प्रभावित हुए बिना अपनी राह नितान्त सुनसान और अकेली राह चला जा रहा था। आँखों के आगे पता नहीं कितनी दूर ऊँचे बहुत ऊँचे कविता का सौंध ज्योति से जगमग दीख रहा था। वह मेरी कल्पना ही रही हो किन्तु अभ्यन्तर में उसी की प्रति छवि थी। लाहौर में हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट ने अलग अलग ढंग से मुझे प्रभावित किया।

कविता की खोज का पता नहीं कब तक समाप्त हो चुकी थी। फिर भी खोज जारी थी अन्तरमन में कि यह सब क्यों हैं, कब तक हैं; किसके लिए है? यह समस्या काशी में ही मेरे मन में नठी थी कि तुम्हारे गाने से फूल बरसते हैं और तुम मेरे गाने से आँसू। एक बहुत लम्बी अतुकान्त कविता लिखी थी सन् 1943-44 में जब टीचर्स ट्रेनिंग कालेज में शिक्षण की विधि का ज्ञान प्राप्त कर रहा था-

इतना सुन्दर गा लेते हो कैसे
खुले कण्ठ से
बतलाओ तो, गा लेते हो कैसे।

जब तक इस प्रश्नका उत्तरनहीं मिल जाता तब तक बच्चन जी की कविता 'क्यों रोता





है जड़वादियों पर,’ वास्तविक बोध नहीं होता। इस लम्बी कविता में कविता की खोज की विशेष विवशता दर्शायी गई है। यह कविता सुनकर शिववरन सिंह चौहान ने भी सशर्त मान्यता दी थी कि यदि रवीन्द्र नाथ ठाकुर इस कविता के केन्द्र में समझे जाएं तो निःसन्देह यह एक बहुत ऊँचीकविता है। अव्यक्त सत्ता के प्रति लिखी यह कविता मैंने निराला जी को अर्पित कर दी और आत्म सुखका अनुभव कर लिया।

किन्तु मात्र इतने से ही मेरी खोज की यात्रा पूरी नहीं हुई। शेष शोध कार्य बम्बई में हुआ सन् 46 से 51 के बीच। कविता की खोज का रोमांस और एडवेन्चर व्यक्तिगत स्तर परगीतों की क्रमिक श्रृंखलाओं के सहारे अन्ततः वहाँ पहुँच ही गया जहाँ किसी दूरी पर बहुत ऊँची कविता के सौंध का ज्योतिर्मय स्वरूप जगमगा रहा था। मेरी यह यात्रा मेरी अपनी व्यक्तिगत दैनिक जीवनयापन की दुरुह दुर्गम कठिनाईयों एवं संघर्षों के बीच की समानान्तर किन्तु तीसरी रेखा से मिली हुई जो आसन्न कोण, संगत कोण, एकान्तर कोण या समकोण बनाती रहती थी। ‘मधु तृष्णा,’ ‘कवि और कविता’, ‘समिधा’ तथा ‘कवि भावना मानव’ इसी अन्तर्दशा की उपज है जिसकी परिणति ‘कवि भावना मानव’ में हुई। इस काव्य ग्रन्थ में उस काव्य पुरुष का अवतरण ‘समिधा’ द्वारा प्रज्ञलित गीतों के हविष और हव्य के बीच हुई जिसकी आरती कविता की इस पंक्ति में उत्तर गई है-

‘मनुज के इस मनोहर रूप का शतबार अभिनन्दन’।

यहीं पर मेरे गीतों को चैन की सांस मिली। खोज समाप्त और यात्रा जारी। यही क्रम जीवन मेंचल रहा है। मेरी काव्य यात्रा के विविध आयाम समानान्तर रेखाओं को काटने वाली तीसरी रेखा से बने विभिन्न कोणों के संकेत पर कविता की अनेक मुखी दिशाओं की ओर बढ़ चले। फलतः गीतों का संस्कारित पूर्ण वेग अनुवाद, मूल छन्द, मुक्त काव्य, उर्दू में गज़ल, नज्म, अशआर, कतात मुक्तक और खबाई, अंग्रेजी में सॉनेट, भोजपुरी कविता, लोक संगीतिका, देशकाल सम्बन्धी कविताएं, व्यंगात्मक कविताएं, विवरणात्मक कविताएं आदि में अन्तर्निहित हो गया। गद्य लेखन में भी ‘उन्हीं मधु गीतों’का रसावेग छलकता रहता है। गद्य हो या पद्य मुझे तब तक बेकार लगता है जब तक वे कविता की चासनी में डुबाए न गये हों। अनुभूति के रंग में रंगी, इसमें पगी बनी कविता होती है चाहे वह गद्य हो या पद्य। अनुभूति का सत्य से सीधा सम्बन्ध है। सत्यानुभूति का ही सहज रूप से सामान्यीकरण हो जाता है। किसी कवि की रचना के साथ पाठक का तभी तादात्य होता है। शेक्सपियर केसोनेट्स का अनुवाद मैं मात्र इसी बल पर कर सका। रावर्ट ब्राउनिंग, डीजी रासेटटी, एस टी कालरिज, जान ड्रिंकवाटर एवं स्कूलों-कालेजों में पढ़ाई जाने वाली कविताओं का पद्यानुवाद बड़ी सरलता से इसीबल पर कर सका। शेक्सपियर के सानेट की एक पंक्ति-





आत्मकथा मोती बीए-खोज की उपलब्धियां



Lilies that of fester smell
far worse than weeds.

का अनुवाद प्रमाण स्वरूप उद्धृत है-

मधुरतम वस्तु भी दुष्कर्म से अपकार्ति पाती है
कमलिनी क्यों न हो, सड़ जाए तो दुर्गन्ध आती है।

'We weep to have what we fear to loose' का अनुवाद-रहूँ रोता उसे लेकर
जिसे मैं पा नहीं सकता।

डी.जीरासेटटी की ब्लोसेड डेमोजल कविता की एक पंक्ति-

Her eyes were deeper than the depth
of waters stilled at even.

का अनुवाद देखें-

सांझ के स्थिर गहन
सिन्धु जल राशि से भी गहन
आंख गीली सजीली हुई।

सत्यानुभूति के स्तर पर छोटे-बड़े सभी रचनाकार सामान्य धरातल पर आ खड़े होते हैं। भोजपुरी हो उर्दू या अंग्रेजी अनुवाद हो या मौलिक कविता छन्द में हो या मुक्तक छन्द में हो कोई भी विधा हो नवगीत, नई कविता या छायावादी या दोहा घनाक्षर कविता सदैव सत्यानुभूति के होनेके कारण सर्वसाधारण की वस्तु हो जाती है।

काव्या यात्रा जारी हैं। विचार और वैभव केन्द्रस्थ हो चुके हैं। कविता का मधुमय रूप मुझे जीवनमें सब त्यारा है। बस तेरा सहारा है। 'बिना गीत गरए न मैं जी सकूँगा।' कविता की खोज में भटकनें की स्थिति सम हो गयी किन्तु उसके रूप पर सर्वस्वन्योछावर करने की क्रिया अधूरी है। एक मुक्तक है- रूप मैं भी बहुत देखता, रूपवाला मगर एक है।

गीत यों तो लिखे हैं बहुत, किन्तु सबमें वही टेक है।

यह जो टेक है वही मेरी उपलब्धि है। इधर-उधर ताकने-झाकने की जरूरत नहीं रह गयी है। इसी को लेकर मरना है। यह रसो वैसः है। यह रस कभी चूकता नहीं। इसी रस से सहा है। इसमें धरती से जुड़ने की कोई स्थिति नहीं होती। इसमें न मारकाट है कोई उपद्रव। यह शास्वत आनन्द का विषय है। इसी से गीत हैं इसी से कविता है। इसी से संगीत है, इसी से नृत्य हैं। जीवन का सारा सुख इसी में समाहित है। इससे अलग किसी का कोई अस्तित्व नहीं है।





भारत में जन्म लेकर वह कौन है जो अपने को भारतीय नहीं कहेगा। वह कौन है जो वेदभूमि अखण्ड भारतवर्ष की राष्ट्रीय चेतना से उद्बुद्ध नहीं होगा। सभी हैं वे जिनका सृजन भारत की माटी-पानी, हवा-रोशनी, रस-गन्ध, फूल-फल, वायुमण्डल से हुआ है। वे सभी हैं किन्तु पत्रकार ही एक ऐसा पागल प्राणी है जो इसी की खेती करता है, इसी का खाता है, इसी का गाता है, इसी का रोता है, इसी के लिए जागता-सोता और जीता-मरता हैं। जो इस तरह का जीवन नहीं जीता वही पत्रकारों पर आरोप लगाता है किन्तु तभी तक जबतक अपनी करनी का फल नहीं भोगता। उस जमाने में पत्रकारिता एकमुखी थी अब वह दसमुखी हो चुकी है। तब लक्ष्य था स्वतन्त्रता और रामराज्य अब लक्ष्य है कुर्सी।

असहायों के दिन कैसे कटते हैं यह असहायों के अतिरिक्त कौन बता सकता है ? वह कौन हैं जो ऐसों की लुक-छिप कर सहायता करता है ? मुझे क्या पता था कि मेरे प्रभु मेरीमदद को पत्रकारिता के नेतृत्व में एक कुभक भेज रहे हैं। कैसे मुमकिन था कि माँ मुझ धूल में पड़े हुये रोते शिशु को अपनी गोद में न उठा ले। मेरे जीवन की जो कुछ भी उपलब्धियां हैं उसी की देन हैं। वैसे तो पूरा जीवन ही एक रोदन है।

सन् 1938 में मैं वी ए होकर बेकार हो गया। अर्थाभाव के कारण पढ़ाई बन्द हो गई। काशी में कहीं रहने खाने पीने का ठिकाना नहीं था। अर्जुन भाई की कृपा पर अवलम्बित रहता था। शम्भुनाथ सिंह से भी परिचय था। कविता घात लगाए रहती थी। मेरी उससे दोस्ती हो गयी थी। यह दोस्ती आसक्ति में बदलने लगी थी मगर मेरी बेकारी बाधक बनी हुई थी। इस नाजुक घड़ी में पत्रकारिता ने सहज भाव से हम दोनों को संभाल दिया। मेरी प्रत्येक कठिनाई को दूर करने वाली पत्रकारिता का स्थान मेरे जीवन में अर्जुन भाई और शम्भुनाथ सिंह के बाद ही था। काशी के मेरे संघर्षशील जीवन में यदि उपरोक्त तीन तत्व नहीं रहे होते तो मैं कहाँ होता और मेरी कविता कहाँ होती, यह सोचा ही नहीं जा सकता है। राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना को प्रगाढ़ बनाकर स्वतंत्रता की प्यास जगाने वाली, जीवन से हीनता, निराशा और पलायन की विवशता को मार-भगा कर कविता के ज्योतिर्मय पथ पर निर्द्धन्द और निर्भय बढ़ते रहने की सतत प्रेरणा भरने वाली सामाजिकता, लोकप्रियता और राजनीतिक चेतना कोनिखारने वाली तथा मेरे जीवित रहने योग्यप्रस्तुत करने वाली पत्रकारिता मेरे गहरे गढ़े दिनों में काम आई। इसका सम्पूर्ण श्रेय शम्भुनाथ सिंह को है। शम्भुनाथ सिंह के हृदय में प्रत्येक व्यक्ति के प्रति कितनी गहरी संवेदनशीलता की भावना भरी है इसका अन्दाजा लगाना मुश्किल है। उनकी इस भावना से जितने लोग उपकृत हुए हैं उनकी संख्या बहुत बड़ी है। न गिन पाने योग्य इनअंकोंमें मैं भी एक अंक हूँ और उनका ऋणी हूँ।





सुभाष बाबू कांग्रेस से अलग हो चुके थे। उन्होंने अग्रगामी दल की स्थापना की थी। सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी दादा शचीन्द्र नाथ सान्याल इन दिनों काशी में ही रहते थे। वे 'अग्रगामी' नाम से एक हिन्दी दैनिक समाचार पत्र निकालने की तैयारी में थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर शम्भुनाथ सिंह ने उनसे मेरा परिचय कराया। सान्याल साहब दोहरे बदन, श्याम वर्ण, औसत कद, गोल चेहरे के एक तीव्र तेजस्वी अलौकिक शक्ति के स्वरूप थे। उनकी लेखनी और वाणी में तथा कार्यप्रणाली में विलक्षण विद्युत की शक्ति थी। उनके क्रोध और प्रेम की पहचान करना सम्भव था। उनमें क्रोध नाम मात्र को नहीं था। वे प्यार के पुतले थे। मगर लोग उनसे भय खाते थे। श्रद्धा और आदर करते थे।

शम्भुनाथ सिंह सहायक सम्पादक के पद पर नियुक्त हो चुके थे। उन्होंने दादा जी से कहकर मेरी भी नियुक्ति इसी पद पर करा दी। उन दिनों 25 रूपया मासिक वेतन एक इनाम था। मुझे इस इनाम को प्राप्त करने से इतनी प्रसन्नता हुई कि छलांग मारता, चौकड़ी भरता मैं अपने गांव आया। मेरे पिताजी नहीं थे घर पर। मेरे चाचा जी मौजूद थे। उनसे आज्ञा लेकर और जो कुछ थोड़ा बहुत सामान था उसके साथ काशी के लिए अपनी पहली नौकरी पर रवाना हुआ। जिस समय घर से चला था घर के देवी-देवताओं को सिर झुकाया, घर के आंगन में तुलसी के दिया पर माथा नवाया, माँ के, चाची के, भाभी के पैर छुए। एक चमचमाते जलपात्र में जो स्वच्छ जल से पूरित और आम्र पल्लव से सजित था, अपनी समूर्ण अभिलाषा संजोये सर पर गमछा डाले, नमित नयन स्टेशन की डगर पर महुआबारी की सखियों के मध्य से निकला। रहिलिया और लवंगिया ने मुझे स्नेह से देखा। स्टेशन पर खड़ी ट्रेन के डिब्बे में बैठने के पूर्व अपने चाचा जी को जिन्हें भइया कहता था प्रणाम किया। भइया जी आशीर्वाद की सजीव प्रतिमा थे। उनकी आँखों से प्रेम के अश्रु बरस रहे थे। घर-गृहस्थी कैसे सम्हलेगी? भतीजे को नौकरी मिल गयी है। इसी तरह की अनेक आशाएं आँसू बनकर बरस रही थीं। मेरी गाड़ी भागी जा रही थी।

अब मैं काशी की सड़कों पर पत्रकार के रूप में विचरण करने लगा। छित्तपुर लाज में अर्जुन भाई के यहां डेरा-डण्डा गिरा दिया था। उस समय उनके अनुज सरयू चौबे वहां थे। विश्वविद्यालय में चौबे जी बी.ए में अध्ययन करते थे और स्वनिर्भित विशेष जीवन पद्धति के द्वारा आत्मविकास की साधना में रत थे। नये सप्ताह के पहले दिन अर्थात् सोमवार से मैंने सहायक सम्पादक का कार्य भी सम्हाला। पाँच दिन अनुभव के बीते, अनुभव का छठवां दिन शनिवार आ पहुँचा। प्रति शनिवार को महात्मा गांधी 'हरिजन' साप्ताहिक के लिए एक विशेष लेख लिखते थे जो एसोसिएटेड प्रेस समाचार एजेन्सी द्वारा तारखरों की मदद से समाचार पत्रों को भेजा जाता था। यह लेख अंग्रेजी





भाषा में लिखा जाता था जिसका अनुवाद अन्य भाषाओं में भी प्रकाशित होता था। गान्धी जी का अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार था। 'हरिजन' का यह विशेष लेख तार घर से आ चुका था और मुझको इसका अनुवाद करने के लिए दिया गया था। मैंने अनुवाद कर भी लिया था और कम्पोज होकर प्रूफ देखने के लिए मेरे सामने वह प्रस्तुत था। सभी सहयोगी बन्धु अपने अपने हिस्से का काम निबटाने में अत्यन्त व्यस्त थे। दादा जी प्रधान (सम्पादक) भी थोड़ी दूर पर अपनी कुर्सी-मेज के सहारे विभिन्न समाचार पत्रों का अवलोकन करते हुए हमें अपनी शैली में निर्देश देते रहते थे। उन्होंने मुझसे पूछा-'हरिजन वाला लेख तैयार हो गया ?' दादाजी साधारण बात भी तीव्र गर्जन ध्वनि में कहते थे। मैंने क्षीण स्वर में उत्तर दिया- 'जी हाँ ! प्रूफ देखा जा रहा है।' 'लाइए जरा हम भी देख लें कि अनुवाद कैसा हुआ है?' यह कहते हुए दादाजी मेरी बगल में एक कुर्सी लेकर बैठ गए। मैंने अनुवाद दादाजी को दे दिया। दादाजी मूल और अनुवाद मिलाकर पढ़ने लगे।

मेरे अनुवाद से दादाजी सन्तुष्ट नहीं हुए। इसमें उनको कुछ भद्दी त्रुटियाँ मिलीं। अनुवाद भी उखड़ा उखड़ा हीन स्तर का था। दादाजी को बहुत क्रोध हुआ। वे मुझपर बरस पड़े- 'छि: छि: ! इतना गन्दा अनुवाद। क्या खाक बीए पास हो। यही अखबार में छपेगा ?' दादाजी मुझे जोरजोर से डाँटने लगे। मैं अपराधी सा बना हुआ था। लज्जा और ग्लानि से सिर नीचे झुक गया था। अपनी इस दयनीय अवस्था को छिपाने के लिए एक समाचार पत्र मैंने अपनी आँखों के आगे फैला रखाथा और क्रोध को अपनी दोनों आँखों से धूँट धूँट-बूँद बूँद पी रहा था। मैं बिलकुल खामोश था। जी भर डाँट लेने के बाद दादाजी को मेरा ख्याल आया। वे भी मौन हो गये। उन्होंने थोड़ा झुक कर मेरे मुँह की तरफ देखा तो एकदम सट्ट लगा गये। मेरी आँखों से गंगा प्रवाहित थी। बहुत ही मन्द और कोमल स्वर में दादाजी ने मुझसे कहा-'हेडिंग लगाइए', यह लीजिए। मुझे अनुवाद का वह अंश देने लगे। मगर मैंने भी इस बीच कुछ निश्चय कर लिया था। मैंने दादाजी से अपनी आवाज को सम्हालते-सहेजते हुए कहा कि मैं आपसे अकेले मैं कुछ कहना चाहता हूँ। दादाजी फौरन तैयार हो गए और हम दोनों वहाँ से उठ कर एक कमरे में चले गए जहाँ कोई नहीं था।

मैंने नजर नीची किए हुए ही दादाजी से कहा कि सम्पादन अथवा अनुवाद का मुझे अनुभव नहीं है इसीलिए मुझसे पूरा संतोषजनक कार्य नहीं हो पाता है। मेरे कारण समाचार पत्र के कार्य में बाधा हो रही है। ऐसी हालत में मैं काम कैसे कर सकता हूँ ? अब मुझे छुट्टी दीजिए, मैं जा रहा हूँ। दादाजी ने मुझे समझाया कि अभ्यास करेंगे तो सब ठीक हो जायेगा। यूनिवर्सिटी से अभी अभी निकले हैं आप, घबराने की जखरत नहीं है। अभ्यास हो जायेगा धीरे धीरे। मैंने कहा कि आप मुझे वेतन देते हैं तो मुझे पूरा काम करना चाहिए। मुझे वेतन न दीजिए, काम करने का





अबसर दीजिए। काम सीख लूँगा तो वेतन लूँगा। दादाजी ने मुझे बार बार समझाया कि न्तु उनकी बात का उस समय मुझ पर कोई असर नहीं हुआ। उन्होंने अपनी सीट पर चलकर मुझसे हेडिंग लगाने को कहा और मैंने खड़े होकर कहा कि इस समय मुझसे कुछ नहीं हो सकता। मैं अब चल रहा हूँ, प्रणाम !

दादाजी खड़े देखते रहे। मैं सीढ़ियाँ उतर गया। सड़क पर आ गया। छिन्नपुर लाज की ओर चलने लगा। नौकरी पर घर से देवी देवता मनाकर, साइत सगुन बनाकर, मंगल कलश भराकर, टीका तिलक लगाकर चला था। मगर हाय री किस्मत, सात ही दिनों में मेरी नौकरी का दिवाला निकल गया। कौन सा मुँह लेकर घर जाऊँ ? काशी में रहूँ भी तो किस तरह ? यही सब सोचते विचारते लॉज पर आया और अपने कमरे में चुपचाप सो गया। सौभाग्य से उस समय न तो अर्जुन भाई ही थे और न सरयू प्रसाद चौबे ही। नवम्बर का महीना था। बिना खाये पीये शनिवार की रात और रविवार का पूरा दिन लॉज पर बिता दिया। यही सोचता रहा कि अगला कदम क्या हो ?

रविवार की शाम को शम्भुनाथ सिंह मुझे ढूँढते हुए अपनी साइकिल से तेलियाबाग से चलकर छिन्नपुर आए। मैं उनको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। शनिवार के दिन शम्भुनाथ सिंह अवकाश पर थे। उनको इस घटना का कोई पता नहीं था। दादाजी ने शम्भुनाथ सिंह को अपना आदमी भेजकर घर से बुलाया था और यह सम्पूर्ण वृत्तान्त दादाजी ने शम्भुनाथ सिंह को बतलाकर कहा कि मैंने आपके साथी को नाराज कर दिया है। मुझे इस बात का बहुत दुख है। उनको बुला लाइए और पुनः काम करने के लिए कह दीजिए। मैंने शम्भुनाथ सिंह से कहा कि वहाँ जाने में लज्जा मालूम होती है। अब कौन सा मुँह लेकर वहाँ जाऊँगा? मेरे अन्य सहयोगी बन्धु क्या कहेंगे ? शम्भुनाथ सिंह ने कहा कि सबकी एक ही दशा है। कोई कुछ नहीं कहेगा। बेवकूफी मत करो। सोमवार को जरूर कार्यालय में चले आना।

सोमवार को दिन में दस बजे अपना सारा मनोबल सम्हालकर अग्रगामी की सीढ़ियों पर पुनः चढ़ने लगा। अपनी कुर्सी पर जाकर बैठ गया। दिया गया काम चुपचाप करने लगा। दादाजी अपनी कुर्सी पर नित्य की भाँति विराजमान थे। नीची नजर से ही मुझको आते देख लिया था। आध-पौने घण्टे बाद वे धीरे से पुनः मेरे पास आए, मेरी बगल में एक कुर्सी पर बैठ गए और मेरे कान के पास अपना मुँह लाकर साँय साँय के स्वर में बोले-‘मुझे क्षमा कीजिए’। मैं अपनी कुर्सी समेत धरती में धूँसा जा रहा था। हो कोई महान दादाजी शबीन्द्र नाथ सान्याल के समान। दादाजी के

इस व्यवहार का प्रभाव मेरे चरित्र पर स्थायी रूप से अंकित हो गया। क्रोध भी





आदर्श और प्यार भी आदर्श। जब तक अग्रगामी में मैं कार्यरत रहा तबतक दादाजी ने मुझसे कुछ नहीं कहा। कभी कोई शिकायत या असन्तोष की बात मेरी ओर से हुई ही नहीं और मैं कभी भी दादाजी की चिन्ता का कारण न बना। वे मुझसे परम प्रसन्न और सन्तुष्ट रहा करते थे।

सहायक सम्पादन का सारा कार्य मैं एक महीने के भीतरही समझ गया। मेरा अभ्यास निखरने लगा और मेरी कार्य क्षमता बढ़ती गयी। अब मैं रायटर्स समाचार एजेन्सी के तार द्वारा प्राप्त सभी समाचारों का अधिकारी हो गया।

विदेशी समाचारों का उत्तरदायित्व मुझ पर होता था। हिटलर का जमाना था। वह खस के साथ अपना अस्तित्व दाँव पर लगा कर जूझ रहा था। सुभाषचन्द्र बसु धुरी राष्ट्रों के साथ मिले हुए थे। अधिकांश भारतीय जनता हिटलर के पक्ष में थी। युद्ध के समाचारों के प्रति सर्वदा उन्मुख स्टालिन ग्राड और लेनिनग्राड के ठेकानों पर होने वाली हिटलरी बमवर्षी के हम लोग उत्साही समर्थक थे। कॉंग्रेस इसी में अपना आन्दोलन क्यों नहीं छेड़ती है, इससे हम सभी कुद्रते और चिढ़ते थे। गांधी जी के आन्दोलन न छेड़ने की नीति की हम लोग कड़ी टीका करते थे और व्यंग्यात्मकशीर्षक लगाते थे। मैंने मुख्यपृष्ठ की एक हेडिंग लगायी थी कि- ‘टॉय टॉय फिस्स, गांधी जी सत्याग्रह नहीं करेंगे’। प्रत्यक्ष कार्रवाई के हिमायती हम लोग सन् 1942 के आन्दोलन की जैसे कि भूमिका तैयार कर रहे हों। कम्युनिस्ट संसार नेताजी सुभाष चन्द्र बसु के विरुद्ध था। हिटलर की पराजय भी होने लगी थी। नक्शा बदलने लगा था। अग्रगामी कार्यालय दादा जी शर्वीन्द्र नाथ सान्याल के नेतृत्वमें जमकर मोर्चा ले रहा था। इस मोर्चे की अग्रिम पंक्ति में मेरा स्थान हो गया था।

उस समय उत्तर भारत में हिन्दी समाचार पत्र ‘आज’ का बोलबाला था। उसके सामने कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। श्री बलदेव प्रसाद गुप्त ज्ञान मण्डल के प्रबंधक थे। पराड़कर जी प्रधान संपादक थे। पं कमलापति त्रिपाठी पराड़कर जी के कार्य में हाथ बंटाते थे। मुँशी कालिका प्रसाद खण्डेलकर, दिनेश दत्त झा प्रमुख सम्पादकों में माने जाते थे। इनका बड़ा प्रभाव था, बड़ी प्रतिष्ठा थी। ‘आज’ का सन्ध्या संस्करण निकालना था। टेलीप्रिंटर मशीन का अभी उपयोग नहीं होता था। सामान्यव्यवस्था के ही आधार पर अपनी राष्ट्रीय नीति के कारण ‘आज’ सर्व साधारण के भीतर चलती हुई रुधिर वाणी थी। सामने कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। किन्तु अग्रगामी के मैदान में उतरते ही आज को अपने बारे में सोचना पड़ गया। उसने टेलीप्रिंटर मशीन की व्यवस्था की। प्रातःकालीन संस्करण प्रकाशित करने लगा। ‘आज’ आगे था, पुनः आगे बढ़ गया, मगर हम लोगों की टीम स्पीरिट ने ‘आज’ को समूल झकझोर दिया। ‘आज’ तो सम्हल गया मगर कुछ ही महीनों में ‘अग्रगामी’ अपनी आन्तरिक कमजोरियों का शिकार होने लगा। तब तक मैं अग्रगामी छोड़ चुका था।





‘अग्रगामी’ से निकलने की मेरी घटना भी मेरे मनबहक होने के कारण थी। मैं स्वयं दादाजी से ही उलझ पड़ा एक दिन। दादाजी अपनी शैली में काम करते थे। वे जोर जोर से बोलते थे। उनकी गर्जन ध्वनि से दीवालें भी कांपने लग जाती थीं। जिस किसी को भी वो डॉट फटकार से कायल करते थे। मुझको तो वे कभी कुछ नहीं कहते थे मगर मैंने ही एक दिन इस बिना पर त्यागपत्र दे दिया कि आपकी नीति और शैली से कार्य करने में बाधा होती है। अतएव आप हमारा त्यागपत्र स्वीकार कीजिए। यह सरासर मेरी हिमाकल थी। मुझे अपनी अनेक गलतियों की व्याख्या के लिए सबल तथ्य मिल जाते हैं। किन्तु इस गलती का कोई भी सही कारण मुझे अब तक नहीं मिला। निहायत पठतावे की भावना से इस बात को स्वीकार कर रहा हूँ और दादाजी की मंगलमयी मानसिक मूर्ति के समक्ष इस त्रुटि के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

दो शब्द महान पत्रकार विद्या मास्टर जी के बारे में भी लिखना प्रसंग से बाहर नहीं होगा। विद्या मास्टर जी सहायक सम्पादक के रूप में अग्रगामी में प्रविष्ट हुए थे। थे तो ये दक्षिण भारतीय, किन्तु अपनी लगनशीलता और परिश्रमशीलता के कारण पत्रकारों की अग्रिम पंक्ति के अधिकारी थे। सब से अधिक सुखद बात तो यह है कि शम्भुनाथ सिंह, विद्या मास्टर का और मेरा एक अलग गुट था। विद्या मास्टर जी के अनुज भीष्म भाई से भी हम लोगों की घनिष्ठता थी। भीष्म जी को कविताओं से बड़ा प्रेम था। वे कविताएं लिखा करते थे तथा हम लोगों की काव्य गोष्ठियां प्रायः जमी रहती थीं। विद्या मास्टर जी की माता जी साक्षात् देवी थीं। वे हम लोगों को अपने पुत्र के समान मानती थीं। उनके हाथ की बनाई इडलियां आज भी पेट में आन्दोलन किए रहती हैं। प्रायः उन्हीं के यहाँ हम लोग भी रात्रि निवास करते थे क्योंकि अग्रगामी कार्यालय के समीप ही विद्या मास्टर जी का अपना निवास था।

विद्या मास्टर जी प्रतिभावान युवक थे। अपनी परिश्रमशीलता से वे निरन्तर सम्पादकीय कला में निखरते जा रहे थे। भाषा पर भी उनका अधिकार बढ़ता जा रहा था। पता नहीं क्यों अग्रगामी में विद्या मास्टर जी के पैर रखते ही दिशाएं साँचे साँचे फुस फुस करने लगीं कि यही व्यक्ति इस पत्र का प्रधान सम्पादक होगा। वे सम्पूर्णानन्द जी के खास आदमी थे। दादाजी उनसे प्रायः सशक्ति रहा करते थे। ये सब लक्षण अच्छे नहीं थे। कुछ ही दिनों में ‘अग्रगामी’ बन्द हो गया। दादाजी गिरफ्तार करके गोरखपुर जेल भेज दिए गए और इसी अवस्था में उनका स्वर्गवास हो गया। मैं सड़क का आदमी पुनः सड़क पर आ गया।

एम.ए. और कानून के त्रिवर्षीय युनिवर्सिटी कोर्स में दो वर्ष बीत चुके थे। अभी एक वर्ष की अवधि और थी। इसमें यदि जी तोड़ कोशिश की होती तो कम से कम एक डिग्री





एम.ए. की प्राप्त की जा सकती थी। मगर वर्षभर की बकाया फीस 150 रु मुझे जमा करनी पड़ती और इतिहास के विभागाध्यक्ष का आदेश प्राप्त करना पड़ता। सवाल था 150 रु का जिसको कुछ अनुवाद कार्य से और कुछ शम्भुनाथ सिंह की कृपा से और कुछ युनिवर्सिटी के लोन से पूरा कर लिया गया और जुलाई के महीने में मैंने एम.ए. अन्तिम वर्ष में अपना नाम लिखा लिया। समस्या थी आवास की, भोजन-पानी की और शिक्षण शुल्क की। इसका प्रबन्ध कैसे किया जाय ?

भोजन पानी के लिए भी पत्रकारिता का ही सहारा लेना मेरे भाग्य में बदा था। मैंने 'आज' समाचार पत्र के प्रबन्धक श्री बलदेव दास गुप्त से वार्ता की। 'आज' में टेलीप्रिंटर मशीन लग गयी थी और उसका प्रातःकालीन संस्करण प्रकाशित होने लगा था। मुझे रात की ड्यूटी दी गयी, साढ़े नौ बजे से 4 बजे तक की 25 रु महीने पर। इसी रकम में मैं 15 रु शिक्षण शुल्क का चुका कर 2 रु महीना भाड़ा और पाँच-छै रुपये भोजन का भी देता था। एक-डेढ़ रुपये में महीने भर नाश्ता करता था। एक छोटी सी कोठरी भैंसी मुहल्ले में सड़क के किनारे मिल गयी थी। कबीरचौरा से भैंसी और भैंसी से युनिवर्सिटी तक की दूरी नित्य पैदल ही तय करनी पड़ती थी। चार बजे वर्षा की रात में जब 'आज'प्रेस से भैंसी के लिए चलता था तो भय के मारे रोंगटे खड़े हो जाते थे। चारों ओर सन्नाटा तथा सुनसान होता था जिसके बीच अकेला मैं चलने को मजबूर था।

बरसात के दिनों में मैदागिन पर और गोदौलिया पर पानी जमा हो जाता था। मैं बड़ी शान्ति से इन सारी कठिनाइयों को पार करता था और भैंसी की अपनी कोठरी में दो-एक घण्टे विश्राम करता था। बिजली के खम्भे की रोशनी में रविवार को सड़क के किनारे बैठ कर पढ़ा भी करता था अथवा ऐतिहासिक निबन्ध तैयार किया करता था। मैंने ट्रीटाइज के बदले निबन्ध का पचास अध्ययन के लिए चुना था। मेरे साथ भैंसी वाली कोठरी में मेरे मित्र गंगारल पाण्डेय भी रहाकरते थे। उनकी गरीबी भी मुझ जैसी ही थी। उनका भी कोई पुरसाहाल नहीं था। एक ही वक्त भोजन कर पाता था। कारण भोजन के लिए युनिवर्सिटी में चार बजे से आठ बजे तक रुकना एक समस्या थी। भोजनोपरान्त विश्राम की कल्पना असम्भव थी क्योंकि साढ़े नौ बजे तक ड्यूटी पर पहुँचना जरूरी था। इतिहास की कक्षा समाप्त होने पर मेरे सहयोगी बन्धु विशेषाध्ययन के निमित्त पुस्तकालय में घण्टों पढ़ते थे। मेरी आँखें राह चलते झप जाया करती थीं। मैं कैसे विशेषाध्ययन करता ? प्रेस में पहुँचकर टेलीप्रिंटर से कई खबरों का अनुवाद करता, उसका प्रूप देखता, मेकअप करता और फर्मा देखकर आर्डर देने के बाद ही प्रेस से भैंसी के लिए निकलता था। पत्रकारिता की पतली और क्षीण डोर में मेरा भविष्य झूल रहा था। कविताएं इन दिनों भी लिखा करता था मगर



आत्मकथा मोती बीए-पत्रकार जीवन के अनुभव



बैठकर कहीं एकान्त में नहीं, पथ पर चलते हुए मन ही मन गुनगुनाते हुए। लंगर खोल दिया था और मेरी नाव तरंगों की कृपा पर धारा में बही जा रही थी।

पत्रकारिता की सहायता से जीवन की रक्षा करते हुए और अपने अध्ययन को गति एवं दिशा देते हुए सफलतापूर्वक जूझ रहा था। बड़े भाई साहब की छत्रछाया में नियमित जीवन व्यतीत कर, व्यायाम से अपने शरीर को ठोस और पुष्ट बना चुका था। अब मैं कठिनाइयों का हँस हँस कर मुकाबला कर रहा था। शिक्षा शुल्क नियमित जमा कर देता था। संसार से लड़ने के लिए हाथ हमेशा खाली रहता था और पाँव स्वच्छन्द। यदि मालवीय जी महाराज के लगे-सटे भक्तों की कतार को चीर कर मैं अपनी फीस माफ करा लिया होता तो भी मुझे संघर्ष करना ही पड़ता क्योंकि सिवा परम पिता की कृपा के मेरा इस समय और कोई सहारा नहीं था। मेरे इस संघर्ष को श्रद्धेय गुरुवर डॉक्टर राजबली पाण्डेय भली-भाँति जानते थे और संघर्ष करने की सतत प्रेरणा उनसे प्राप्त होती रहती थी। आज प्रेस के खांडिलकर जी और मुँशी कालिका प्रसाद का स्नेह मुझे प्राप्त था। पराड़कर जी के आस-पास रहने का भी सुख उपलब्ध था। पं. कमलापति त्रिपाठी का भी दर्शन करने का अवसर मिल जाया करता था। पं. दिनेश दत्त झा के प्रति श्रद्धाजनित भय का भाव रहा करता था। लंगड़े शास्त्री जी भी मुझसे बहुत प्रसन्न रहा करते थे। पत्रकारिता का यह जीवन आनन्दमय था।

15 जनवरी 1941 तक मैंने रात्रि ड्यूटी की और इसके बाद अवकाश लेकर अध्ययन में लगा। परीक्षोपरान्त पुनः पत्रकारिता में तल्लीन हुआ। अब मैं दिन की ड्यूटी में था। दो-तीन महीने कार्य करने के बाद ही शम्भुनाथ सिंह के साथ छोटा नागपुर (बिहार) प्रदेश की जंगलीजातियों के बीच तात्कालिक उत्थान कार्य करने के निमित्त सेवाश्रम तिरिल (रांची) में नियुक्त हो गया और वहां से लौटकर सन् 1942 के अप्रैल या मई के महीने में पटना से प्रकाशित होने वाले नये हिन्दी दैनिक आर्यावर्त में सम्पादकीय विभाग में नियुक्त हो गया। मेरे साथ लंगड़ शास्त्री जी (इन्वार्ज सम्पादक) विद्या भास्कर जी और दूधनाथ सिंह जी भी थे। यह 'आज' का सम्पादकीय स्टाफ था। इसके प्रधान सम्पादक थे पण्डित दिनेश दत्त झा जो काशी में ही अपनी कोठी में रहा करते थे और यहीं से आर्यावर्त का संचालन एवं सम्पादन कार्य वे किया करते थे। 'आर्यावर्त' के मेरे अन्य सहयोगियों में भवेशदत्त झा, जयकान्त और मुरलीनाथ थे। सहायक सम्पादक के रूप में मेरी क्षमता उत्तरोत्तर विकसित होती जा रही थी। आत्मविश्वास भी बढ़ता जा रहा था। लगता था जैसे पत्रकारिता ही मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य बन जायेगी।

'आर्यावर्त' में काम करते हुए एक अत्यन्त तुच्छ घटना घटी जो मुझे हमेशा यादरहती





है। वेतन के प्रश्न पर हमारे सहयोगियों में कुछ असन्तोष था। सहयोगी बन्धु हड़ताल करने का इरादा पुख्ता कर रहे थे। किन्तु राय सबकी यह हुई कि इन सहयोगियों के प्रतिनिधि स्वरूप विद्या मास्टर जी और दूधनाथ सिंह जी स्वयं काशी जाकर ज्ञा जी से स्थिति स्पष्ट कर आवें। तब तक यहां किसी प्रकार काम को ठेला जाय। विद्या मास्टर जी समाचार संपादक थे। उन्होंने मुझे वह कार्य सौंपा, शास्त्री जी ने इसे स्वीकार कर लिया। अगले दिन दस बजे कार्य आरम्भ होने पर एक सहयोगी बन्धु को मेरा इन्जार्च बनाया जाना जंचा नहीं। मेरे दिए समाचारों का अनुवाद न कर वे टेलीप्रिंटर मशीन पर खड़े होकर समाचारों को पढ़ने और समझने लगे। मैंने उनसे निवेदन किया कि वे दिया हुआ कार्य सम्पालें और समय व्यर्थ न करें। वैसे ही देर से आए भी हैं। मेरी बात का उत्तर उन्होंने अंग्रेजीमें दिया-‘मिस्टर मोती ! आई नो माई जॉब, यू नीड नाट वोदरा’ इस बात को लेकर आपस में बड़ी जोरदार झड़प हो गई। शास्त्री जी बेचारे घबराए हुए आये कि पहले अखबार आज का निकाल लीजिए आप लोग। काम खत्म होने पर हम लोग इस घटना पर विचार करेंगे। विचार क्या होना था समझ-बूझ कर सब चुप लगा गये और उसी रात विद्या मास्टर जी तथा दूधनाथ जी अपनी-अपनी वेतन वृद्धि तथा हम लोगों के लिए चेतावनी लेकर आए कि यदि किसी प्रकार की गड़बड़ी किसी ने की तो उसको कार्यमुक्त कर दिया जायेगा। सब लोग अपनी अपनी जगह दुरुस्त हो गये। हड़ताल करने का इरादा खत्म हो गया। विद्या मास्टर जी और दूधनाथ सिंह जी से प्रबन्ध विभाग विशेष रूप से प्रसन्न रहा करता था जिसको आगे करके लड़ा जाए यदि वही अपना पक्ष बदल दे तो सिवा लज्जाजनक असफलता के और मिल ही क्या सकता है। किसी पर भरोसा करके आगे चलने का यह जीवन का पहला पाठ था।

‘आर्यावर्त’ में दिन बड़े आराम से बीतने लगे। मैं काम में परिश्रम करता था। किसी को मुझसे कोई शिकायत नहीं थी। विद्या मास्टर जी से मेरा धनिष्ठ संबंध था ही। शास्त्री जी का स्नेह मुझे प्राप्त था। दूधनाथ सिंह, शम्भुनाथ सिंह की कोशिश से सम्पादकीय विभाग में आये थे। ये भी अपने मित्र थे। बहुत अध्ययनशील, परिश्रमी, गम्भीर और उदार विचार के थे। भवेश जी, जयकान्त जी और कुलानन्द जी से मेरी प्रगाढ़ मैत्री थी। अपने मित्रों के बीच रहते हुए और कार्य करते हुए बड़ा सन्तोष और सुख होता था। चालीस रूपये में खा-पीकर कुछ रूपया घर भी भेज देने का अवसर मिलता था।

भारत स्वतंत्र होने के लिए बेचैन था। बम्बई में राष्ट्रीय महासभा की कार्य समिति की बैठक आयोजित थी। ‘अंग्रेजों भारत छोड़ो’ और ‘करो या मरो’ का सन्देश भारतवासियों को देकर कॉंग्रेस के सभी नेता 7/8 अगस्त 1942 में गोरीनौकरशाही के हथकण्डोंके शिकार हो गये।





सभी एक साथ पकड़ कर जेल में ठूंस दिये गये। आन्दोलन अनाथ हो गया। भारत सचिव एमरी ने अपने इस कार्य के स्पष्टीकरण में हजारीबाग जेल से प्राप्त जयप्रकाश बाबू द्वारा बनाये गये आन्दोलन की योजना के प्रारूप के आधार पर यह घोषणा की कि कॉंग्रेस तोड़ फोड़ की नीति अपनाना चाहती थी। इसीलिए कॉंग्रेस के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया है कि 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी'। एमरी साहब के इस प्रसारण से भारतीय जनता को 'करो या मरो' आन्दोलन का एक संकेत मिल गया। इस दृष्टि से सन् 42 के आन्दोलन के नेता स्वयं भारत सचिव एमरी ही बन गये। सम्पूर्ण भारत में तोड़ फोड़ और लाइन उखाड़ने तथा तार काटने का काम व्यापक पैमाने पर होने लग गया। देश अराजक हो उठा। गोरी नौकरशाही बौखला उठी। उसने व्यापक रूप से दमन चक्र शुरू किया। हिंसात्मक उपद्रव भड़क उठे। जनता मरने-मारने को तैयार हो गयी। 'करो या मरो' आन्दोलन का स्वरूप सहज भाव से अपने आप ही तैयार हो गया।

बिहार इस राष्ट्रीय महायज्ञ में अपना अंशदान लेकर कूद पड़ा। छात्रा और युवा वर्ग इसमें सबसे आगे थे। पटना में कलकटरी कचहरी के ऊपर राष्ट्रीय झण्डा फहराने के प्रयत्न में एक वीर बालक शहीद हो गया। अपार जनसमूह क्रोध से पागल हो उठा। पेड़ काटकर सड़कें जाम की जाने लगीं। रेल लाइनें उखाड़ दी गयीं। तार काट डाले गये। थानों और कचहरियों पर आक्रमण होने लगे। आर्योवर्त के सम्पादकीय विभाग के कार्यालय से हम सभी सड़कों पर होने वाले इन उपद्रवों को स्पष्ट रूप से देखते थे। दूसरे दिन यह खबर उड़ी कि आस्ट्रेलियन सेना नगर मेंशान्ति स्थापनार्थ बुलाई गई है। सड़क पर यदि किसी को सैनिक देख लेते हैं तो वे उसे गोली से उड़ा देते हैं। घर के भीतर से स्त्रियों-पुरुषों को पकड़ कर उनसे सड़कों की सफाई कराते हैं। पटना शहर पर कब बम वर्षा हो जाये, कुछ कहा नहीं जा सकता था। पटना में रहना अपनी जान देना है। पटना से बाहर निकलना आग की लपटों में कूदना है। न कहीं भोजन, न कहीं चाय। 'आर्योवर्त' में समाचारों का आना बन्द हो गया था। भारत में अथवा विश्व में क्या हो रहा है, इसका कुछ पता नहीं था। संसार एक भयंकर सुनसान सा विराट पिण्ड प्रतीत होता था। हम लोग किसी न किसी प्रकार भाग कर अपने घर पहुँच जाना चाहते थे मगर यातायात एकदम अवरुद्ध था। महेन्द्र घाट पर कुछ नावें अवश्य थीं। विद्या मास्टर जी के नेतृत्व में हम और दूधनाथ सिंह महेन्द्र घाट पहुँचे। तीसरे पहर एक नाव ठीक की गयी। कुछ मुसाफिर भी पटना से निकल भागने के चक्कर में मिल गये। भादो का महीना। गंगा, सोन, सरयू, बड़ी गंडक का संगम स्थल। अपार जलराशि। रात्रि का समय। ऊपर से घनगर्जन और वर्षा। संगम पर रात्रि में मल्लाह का साहस डोल गया। हम लोगों ने जीवनाशा त्याग दी और सर झुकाकर होनी की प्रतीक्षा शुरू की।





संगम पर ही भोर हो गयी और प्रातःकाल पुनः दिशाओं ने नाव को आगे बढ़ाने का अवसर दिया। हम लोग पटना से बाहर हो गये थे। आरा और बक्सर, कहीं भी विराम करने का अवसर नहीं मिला। आरा पर मंडराते हुए विमानों को देखकर हम लोगों के होश उड़ गये। मैं बीमार पड़ गया था। मुझे बुखार था और मल की शिकायत थी। दो रात-दिन चलकर भादो की उमड़ी गंगा के बीच से किसी प्रकार बलिया पहुँचे रात में। यहाँ जिस मुहल्ले में हम लोग रात काटने की गरज से रुके, वहां हिन्दू मुस्लिम दंगों की आशंका थी। भोर के पहले ही विद्या मास्टर जी और दूधनाथ सिंह नौका से काशी चले गये। मैं किसी प्रकार एका और रिक्षा से सिकन्दरपुर पहुँचा। यहाँ भी जनता जनार्दन का विराट स्वरूप थाने पर कब्जा करने के लिए उमड़ा था। मैंने भी अपना तिरंगा झण्डा एक डण्डे में लगाकर लहराया और इन्कलाब का नारा लगाया। यहां से अपने सामान के साथ मैं कुतुबगंज घाट (सरयू नदी के तट पर) पहुँचा। एक छोटी सी नौका के द्वारा चाँदनी रात में उमड़ी नदी की कड़कती तरंगों की गर्जन ध्वनि के बीच हम अपने गाँव के लिए रवाना हुए। मैं जीवन-मरण की भावना से ऊपर उठ चुका था। सिवा इस एक रास्ते को छोड़कर आगे बढ़ने का दूसरा कोई उपाय नहीं रह गया था। तुर्तीपार के पुल पर दोनों ओर सैनिकों का पहरा था। गनीमत यही थी कि हमारी नौका मछली मारने की एक अत्यन्त क्षुद्र नौकी थी और उसका मल्लाह जर्जर तथा बूढ़ा था। सुबह का समय था। पुल के नीचे उत्तर के तट पर नदी की धारा गहरी और तीव्र थी। इसके ऊपर से नौका ले जाना असम्भव था। अतः मल्लाह ने नौका किनारे लगा दी। हाथ-मुँह धोने के उद्देश्य से हम नौका से उत्तर पड़े, तिरंगा झण्डे को मैंने सर पर बाँध रखा था और नदी के किनारे कुल्ला कर रहा था कि एक परिचित मित्र राजकिशोर से अचानक भेट हो गयी। वे इस समय हैदराबाद युनिवर्सिटी में हिन्दी विभागाध्यक्ष हैं। उन्होंने सचेत किया कि पुल के दोनों ओर पर गारद है। प्रत्येक नौका की तलाशी होती है। आप तिरंगे को कहीं छिपा लें। पकड़े जाने पर मार-पीट कर वे जेल भेज देते हैं। सम्हल कर जाइए।

मैंने तत्काल तिरंगा लपेट कर अपनी जवाहर जैकेट में छिपा लिया। नाव के भीतर जो शेड था, उसी में छिप गया। मेरे पास एक बस्ता था जिसमें महात्मा गाँधी के बहुत से वक्तव्य समाचार के रूप में टेलीप्रिंटर मशीन से प्राप्त रखे हुए थे। यह पूरा बस्ता, तिरंगा झण्डा और अपने आपको मैंने शेड में छिपा लिया। मल्लाह ने बीच धारा से अपनी नौका बढ़ाई और बिना किसी रोक टोक के नाव पुल के बीचोबीच से आगे निकल गयी।

सर पर बक्स लादे हुए और कन्धे पर बस्ता लटकाये मैं अपने गाँव पहुँचा। गाँव वालों को अपार हर्ष हुआ। यहाँ पर अफवाह पहुँच चुकी थी कि पटना में भयंकर गोली काण्ड





हुआ है जिसमें हजारों आदमी मारे गये हैं। लोगों को उम्मीद नहीं थी कि मैं जीवित घर लौट सकूँगा। सभी को यह विश्वास हो गया था कि मोती बाबू सुराजी हैं, इस गोली काष्ठ में जखर मार डाले गए होंगे। बिजली की तेजी से मेरे गाँव आने का समाचार चारों ओर फैल गया। रोती चिल्लाती हुई मेरी माँ घर से बाहर निकली और मुझे सकुशल देखकर तुरन्त नहाकर कपड़े बदलकर काली माई को जल-अक्षत चढ़ा आई। तूफान के बीच से सही सलामत घर पहुँच जाने की प्रसन्नता हुई। इसी प्रकार मेरे छोटे भाई परमानन्द, जो बड़हलगंज में बड़े भाई साहब के संरक्षण में दर्जा 9 में पढ़ते थे, नौका द्वारा सभी सामानों के साथ सकुशल पहुँच गए। परिवार में जो बेचैनी थी वह मिट गयी।

सन् १८४२ के अगस्त से दिसंबर तक भारत और भारत की जनता गोरी नैकरशाही से तबाह रही। पहला वेग था आन्दोलन का और दूसरा वेग था उसके दमन का। सन् १८५७ के विल्लव के समान १९४२ का आन्दोलन भी दबा दिया गया। मैं बरहज, देवरिया और गोरखपुर के विभिन्न स्थानों पर ठोकरें खाता रहा। बरहज के आन्दोलन में मैं भी शरीक था। मुझे पकड़कर गोरखपुर के जेल में नजरबन्द कर दिया गया था। किन्तु शीघ्र कोई सबूत न मिलने के कारण छोड़ दिया गया। अन्ततोगत्वा पुनःकाशी में अपने पुराने मित्रों के बीच आ पहुँचा। हिन्दी दैनिक 'आज' के प्रबन्ध विभाग में कुछ दरार सी पड़ गयी थी। उसके प्रबन्धक श्री बलदेव दास गुप्त एक नया हिन्दी दैनिक निकालने के प्रयास में थे। मैदागिन चौराहे पर इन्हीं दिनों किसी तारीख पर सन्ध्या समय हमारी उनसे मुलाकात हो गयी। उन्होंने प्रस्ताव कर दिया हिन्दी दैनिक 'संसार' के सम्पादकीय विभाग में काम करने का। मैंने पचास रुपये मासिक वेतन की शर्त रखी। श्री गुप्त ने यह शर्त सहर्ष स्वीकार कर ली। इस प्रकार पटना के बाद हिन्दी दैनिक 'संसार' की सेवा में मैं लगा। इसका कार्यालय गायधाट पर था। पहले तो लंका से मैं कार्यालय आता जाता रहा। बाद मैं दारा नगर में भोलानाथ तिवारी के मकान में एक कमरा किराये पर लेकर रहने लगा। कुछ दिनों तक गंगा प्रसाद अखौरी के मकान पर इसी गली में मैं कुछ दिनों तक रह चुका था। अखौरी जी सुप्रसिद्ध समीक्षक थे। काशी के साहित्यिक विद्वानों में उस समय उनका अपना विशिष्ट स्थान था। पं. ताराशंकर वैद्य का चिकित्सालय भी पास में था। हमारा यह समय साहित्यिक रचना और साहित्य गोष्ठियों में ही अधिक बीतता था।

श्री बलदेव प्रसाद जी गुप्त बहुत ही सुयोग्य व्यवस्थापक थे। वे मितव्यी, व्यवहार पटु और कुशल संगठनकर्ता थे। बेढ़ब जी संसार के साप्ताहिक संस्करण में थे। पराङ्कर जी और पं कमलापति त्रिपाठी भी कुछ समय तक हिन्दी दैनिक 'संसार' की सम्पादकीय टिप्पणियाँ





लिखा करते थे। सहायक सम्पादक के योग्य जो सेवा कार्य था, उसमें मैं भी दक्ष हो गया था। ठीक समय पर नियमित कार्यालय में पहुँच जाना, पूरे समय तक एकाग्रचित्त कार्य करना नित्य का क्रम था। शम्भुनाथ सिंह का साथ था यद्यपि वे इसके सम्पादकीय विभाग में नहीं थे। वे उदय प्रताप कालेज की पत्रिका 'क्षत्रिय मित्र' की देखभाल करते थे। शम्भुनाथ सिंह के पीछे एक वृहद गोल चला करता था जिसमें सागर सिंह, हरिमोहन, विन्ध्यवासिनी दत्त त्रिपाठी, महेन्द्र और नामवर सिंह आदि थे। शिवदानसिंह चौहान, शमशेर, अमृत राय, रामविलास शर्मा और त्रिलोचन भी उन दिनों काशी के साहित्यिक जगत में काफी हलचल किए रहते थे। पं.शान्तिप्रिय द्विवेदी, पद्मनारायण आचार्य बेढब जी, पं सीताराम चतुर्वेदी, पं श्यामनारायण पाण्डेय उन दिनों अग्रिम पंक्ति में गिने जाते थे। इसी में यदा-कदा नमदेश्वर उपाध्याय, शिवमूर्ति मिश्र 'शिव', ठाकुर प्रसाद और सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव भी यहाँ-वहाँ मिल जाया करते थे। पं कान्तानाथ पाण्डेय 'चोच', बेथड़क बनारसी, कौतुक बनारसी, लालधर त्रिपाठी, भइया जी बनारसी, दिलीप नारायण सिंह अपने रंग में खिले रहते थे। ठाकुर प्रसाद सिंह ने अपना महाकाव्य 'महामानव' लिखकर प्रकाशित करा लिया था। इन लोगों में आन्तरिक एकता रहा करती थी। कोई किसी की निन्दा नहीं करता था। अत्यधिक सन्तोष की बात यह थी कि मैं सबका स्नेह पात्र था। कवि सम्मेलनों के मंच पर पूर्ण सफल था। लोकप्रियता बढ़ती जा रही थी। पत्रकारिता और साहित्यिकता का चोली दामन का साथ बड़ा ही उत्साहवर्धक था। काशी में मेरा यह स्वर्णकाल था।

'संसार' के संपादन कार्य से मैं बहुत ही सन्तुष्ट और मग्न था। वेतन भी उस युग के स्तर से कम नहीं था। हाथ से भोजन पकाता था। अपना बर्तन स्वयं साफ कर लेता था। शेष समय या तो साहित्यिक गोष्ठियों में बीतता था या काव्य रचना में। लंका से गायघाट जाते समय मैंने 'हरसिंगार के फूल' मूल छन्द में एक कविता लिखी। कमेच्छा से गायघाट जाते समय पथ में ही 'खूप भार से लड़ी, तू चली' शीर्षक कविता लिखी। इस कविता की सराहना शम्भुनाथ सिंह को छोड़कर सभी ने की। अनेक नए प्रयोग करने का मुझे अवसर मिला। गीतों की संख्या में तेजी से वृद्धि होने लगी। वास्तव में मेरा यह समय काव्य रचना की दृष्टि से बहुत ही श्रेष्ठ था। गाजीपुर नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में गाजीपुर के सम्मानित वयोवृद्ध सरकारी वकील पं.भागवत मिश्र की अध्यक्षता में आयोजित कवि सम्मेलन मेरे जीवन का वह प्रथम कवि सम्मेलन था जिसमें गीतों की शक्ति का चमत्कारिक प्रभाव काव्य प्रेमियों को देखने को मिला था। गाजीपुर मेरे लिए इसी कारण दूसरा काशी बन गया था। श्रद्धेय मिश्र जी के हृदय का सम्पूर्ण प्यार मुझे सहज ही प्राप्त हो गया। गाजीपुर के साहित्यिक जगत के तत्कालीन सभी साहित्यिक मित्र मेरे प्रशंसक



आत्मकथा मोती बी.ए-पत्रकार जीवन के अनुभव



और समर्थक हो गये। श्रीकृष्ण राय 'हृदयेश', सभाजीत पाण्डेय 'अश्रु', श्रीराम सिंह गहलौत, श्रीनाथ मिश्र, वेखुदी रिजवी, खामोश गाजीपुरी के साथ वकील साहब के आवास पर काव्य गोष्ठियों में मैं हमेशा ही प्रशंसा का भागी होता था। बलिया और जौनपुर तक मेरा प्रभाव क्षेत्र इसी प्रकार फैला हुआ था। 'मैं गीत क्या सुनाऊँ, मैं प्यार चाहता हूँ, मैं आज जा रहा हूँ, तुम याद आ रही हो, कोई तो मुझको प्यार करे, मेरे भुजबन्धन में आवो, तुम क्या मुझको समझावोगे', इस समय की मेरी सर्वाधिक लोकप्रिय कवितायें हैं। मुझको और शम्भुनाथ सिंह को गीतकार के रूप में सम्बोधित किया जाता था। अर्जुन भाई गया (विहार) में किसी शिक्षा संस्था में प्रवक्ता के पद पर नियुक्त हो गये थे। सन् 42 के आन्दोलन में जी भर जूझ कर गंगारत्न पाण्डेय या तो कहीं फरार हो गये या गिरफ्तार।

गाजीपुर कवि सम्मेलन में सम्मिलित होने के कुछ दिन पहले ताराशंकर जी वैद्यराज के दबाखाने में बैठा उनको अपना एक गीत 'मैं प्यार चाहता हूँ' सुना रहा था। गीत की पहली कड़ी थी-

जिसकी मृदुल हँसी ने

नव अरुण डोर खींची

जिसकी सुरभि सुधा ने

शुचि किरन डगर सींची

उस डाल के सुमन का उपहार चाहता हूँ।

मैं प्यार चाहता हूँ।

झर झर मरन्द मधु में

झर भी न पा रहे हैं

भर भर भुवन सुधा से

भर भी न पा रहे हैं

इस रूप माधुरी पर अधिकार चाहता हूँ।

मैं प्यार चाहता हूँ।

ताराशंकर जी गीत सुनते हुए आह्लाद के आवेश में बोल उठे-'मोती तुमको गोली मार दी जाएगी, गोली ! सुमन का उपहार और रूप माधुरी पर अधिकार चाहते हो' और प्रेम से उन्होंने मुझे अपने गले से लगा लिया। प्रेमाश्रु छलक आए। गंगा जी की पावन लहरियों में मैं डूबने उत्तराने लगा। आनन्द की यह अवस्था मेरे जीवन में स्थायी हो गई।

'संसार' में काम करते हुए कविता के क्षेत्र में आगे बढ़ते रहने का पर्याप्त अवसर प्राप्त था। कवि सम्मेलनों के आयोजनों में शम्भुनाथ सिंह, मोती बी.ए और महेन्द्र का सम्मिलित



आत्मकथा मोती बीए-पत्रकार जीवन के अनुभव



होना अनिवार्य सा रहता था। महाकवि पं श्यामनारायण पाण्डेय के बिना कवि सम्मेलन कोई अर्थ ही नहीं रखता था और जब तक गुरुवर आचार्य सीताराम चतुर्वेदी उसकी अध्यक्षता एवं उसका संचालन नहीं करते थे तब तक वह सार्थक नहीं होता था। कवि सम्मेलनों के माध्यम से महाकवि पं.श्यामनारायण पाण्डेय तथा गुरुवर आचार्य पं.सीताराम चतुर्वेदी का आशीर्वाद मुझे प्राप्त हो गया था। उन दिनों नामवर सिंह कक्षा 10 या 11 के छात्र थे, उदय प्रताप कालेज में पढ़ते थे। शम्भुनाथ सिंह के साथ वे प्रायः हम लोगों से मिलते रहते थे। सवैया या घनाक्षरी छन्द में कुहराका बहुत ही सफल चित्रण उन्होंने अपनी इसी छात्रावस्था में किया था जिसको कवि सम्मेलनों में प्रेमसे सुनाया करते थे। उसकी बड़ी प्रशंसा होती थी।

‘संसार’ का साप्ताहिक संस्करण आदरणीय बेढब जी के सम्पादन में प्रकाशित होता था मैंने अपनी दो कविताएं (गीत) प्रकाशनार्थ उनकी सेवा में भेजी। 1. मैं गीत क्या सुनाऊँ ? 2. तुम याद आ रही हो। बेढब जी ने अपनी टिप्पणी के साथ उन दोनों कविताओं को मेरे पास लौटा दिया। मेरी कविताओं में उन्हें लिंग की त्रुटि दिखलाई दी। मैंने ‘आँसू और मोती’ का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया था। इसी पर असन्तुष्ट होकर बेढब जी ने यह लिखकर मेरे गीत लौटा दिए कि पन्त जी ने मनमाने ढंग से शब्दों के स्वरूप को विकृत कर दिया। प्रांत को स्त्रीलिंग में लिखकर इस प्रकार की मनमानी मैं अपने चलते नहीं होने दूँगा। बेढब जी से कुछ कह पाना मेरे लिए उन दिनों बड़ा कठिन काम था। मुझे कुछ दुःख हुआ जरूर मगर उस समय मैं चुप लगा गया। कुछ ही महीनों में बेढब जी ‘संसार’ से अलग हो गये। मैंने अपनी दोनों कविताएं बड़ी जोरदार फीचरिंग के साथ साप्ताहिक ‘संसार’ के डबल स्टम्पों में स्वयं प्रकाशित की। सम्भवतः उस समय उसके सम्पादक अपने कोई अभिन्न मित्र ही थे।

बेढब जी की आपत्ति अपने स्थान पर नितान्त सत्य है। साहित्य में मर्यादा की सीमा रेखा का उल्लंघन कदापि नहीं होना चाहिए। किन्तु कभी कभी ऐसी स्थिति रचनाकार के सम्मुख उपस्थित हो जाती है कि प्रत्यक्षतः उसका कार्य दोषपूर्ण दीखता है किन्तु वास्तव में वह दोषपूर्ण होता नहीं है। मैंने जो गीत उनकी सेवा में प्रस्तुत किया था प्रकाशनार्थ, उसमें ‘आँसू’ और ‘मोती’ शब्द अपनी सुविशिष्ट उपाधियों के सहित प्रियतमा के सम्बोधन के रूप में प्रयोग में लाया गया था। यथा-

आँसू बही हुई सी
मोती, बिछी हुई सी
भींगी हुई पलक में
बीती, कही हुई सी





खिल सुमन पाँखुरी सी
मन को लुभा रही हो
तुम याद आ रही हो।

उपरोक्त छन्द में ‘आँसू’, ‘मोती’, बीती, प्रियतमा के हित हैं और वह भी सम्बोधन कारक में जो अभिव्यंजना में आँसू और मोती से अपनी प्रियतमा के अन्तः सौन्दर्य को दर्शाने के लिए करना चाहते हैं। वह किसी और विधि से नहीं व्यक्त की जा सकती। आँसू, मोती पुलिंगमें प्रियतमा को ही ले डूबेंगे। जहां ऐसी विवशताएं उत्पन्न हो जाएं वहां तो समझ के अनुसार शब्दों को मोड़ न देना ही दोषपूर्ण है। बेढब जी के प्रति सम्पूर्ण आदर भाव रखते हुए पंत जी के सम्बन्ध में इस सन्दर्भ में निरपेक्ष रहते हुए आज भी मेरी धारणा है कि मैंने जो लिखा है वह सत्य है। रचनाकार का यह नैसर्गिक अधिकार है।

राजनीति के क्षेत्र में भी बड़ी सरगर्मी थी। देश के सभी नेता जेल में बन्द थे। जयप्रकाश बाबू भूमिगत होकर सन् 42 के राष्ट्रीय आन्दोलन को जीवित बनाए हुए थे। अनेक क्रांतिकारी परचे गोपनीय ढंग से प्रकाशित और वितरित होते रहे थे। शम्भुनाथ सिंह के बड़े भाई डॉक्टर स्वामीनाथ सिंह होमियोपैथ डॉक्टर थे जो तेलियाबाग में किराए के एक मकान में स्थायी निवास करते थे और चिकित्सा भी। वे बड़े ही उदार और लोकप्रिय थे। वे जयप्रकाश बाबू के भूमिगत आन्दोलन के पूर्वी क्षेत्र के संचालक बनाए गये थे। उनके साथ हम लोग भी आवश्यकतानुसार आन्दोलन का कार्य करते रहते थे। आन्दोलन सम्बन्धी सामग्रियां हम एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया करते थे। खुफिया विभाग डॉक्टर स्वामीनाथ सिंह और उनके यहाँ आने जाने वालों पर कड़ी नजर रखता था। डॉक्टर साहब भी छिपकर रहा करते थे। वे यदा कदा अपने दवाखाने में आते थे। उस समय काशी में खुफिया विभाग के दरोगा श्री ब्रह्मा सिंह का बड़ा आतंक छाया रहता था। वे छिपे आन्दोलनकारियों की तलाश बड़ी सरगर्मी से करते थे व कभी कभी बड़े ही निष्ठुर और कूर हो जाते थे।

अप्रैल सन् 1942 के महीने में पहली तारीख को शम्भुनाथ सिंह मुझसे दारानगर में मेरे निवास स्थान पर मिले। मैं भी भोला नाथ तिवारी के मकान में नीचे के उत्तर वाले कमरे में रहता था। शम्भुनाथ सिंह ने प्रस्ताव किया कि यहाँ तुम्हें भोजन आदि का कष्ट है, क्यों न तुम भी तेलियाबाग के अपने ही मकान में चलकर रहो। वहाँ आराम रहेगा। मुझे उनकी बात जैव गई और पल भर में झोरा-झण्टा सम्हालकर मैं शम्भुनाथ सिंह के साथ डॉ स्वामीनाथ सिंह के मकान पर चला आया।





यहाँ आने के पूर्व पण्डित श्यामनारायण पाण्डेय के सुझाव पर मैंने टीचर्स ट्रेनिंग कालेज में भर्ती होने की उम्मीदवारी की दखास्त भी दे दिया था। मेरा इरादा टीचर बनने का नहीं था। मैं शोध छात्र बनकर पी-एच.डी. करना चाहता था। मगर परिस्थितियाँ साथ नहीं दे रही थीं। पाण्डेय जी ने कहा-'जब तक अनुकूल समय शोध कार्य के लिए नहीं आता तब तक क्या हानि है, तुम ट्रेनिंग ही कर डालो। मैं आचार्य पं.सीताराम चतुर्वेदी से कहकर तुम्हारा चयन ट्रेनिंग में करा दूँगा।' ट्रेनिंग के लिए चयन उन दिनों टेढ़ी खीर थी। किन्तु गुरु कृपा से वह मेरे लिए सुलभ दीख रही थी। मैंने प्रार्थना पत्र आचार्य पं.सीताराम चतुर्वेदी का आशीर्वाद लेकर सम्बन्धित कार्यालय में भेज दिया था।

इन्हीं कुछ भावी कार्यक्रमों का सपना लिए हुए अपने गीतों के नशे में डाक्टर स्वामीनाथ सिंह के मकान में छत पर सोया था। शम्भुनाथ सिंह उसी रात को रेलगाड़ी से कहीं बाहर (काशी से) चले गये। मेरे साथ छत पर शम्भुनाथ सिंह के पट्टीदार रामकृपाल सिंह और त्रिलोचन शास्त्री भी सोये थे। डॉ.स्वामीनाथ सिंह कहीं से दौरा करके अपने घर आ गये थे। ब्रह्मा सिंह के सिपाहियों को इस बात का पता लग गया। भोर होते होते डॉक्टर साहब के घर को पुलिस ने चारोओर से घेर लिया। सबसे पहले डॉक्टर साहब गिरफ्तार किए गये। उस समय पता नहीं चला किदरोगा ने उनको कहां भेज दिया। उनके बाद त्रिलोचन शास्त्री और रामकृपाल को तांगे परबिठाकर भेलूपुर हवालात भेज दिया गया। मुझको भी इसी प्रकार ले जाकर चेतगंज की हवालात मेंबन्द कर दिया गया। अब मैं सरकारी मेहमान बन गया। हिन्दी दैनिक 'संसार' के सम्पादकीय विभाग से मुक्ति मिल गयी। चेतगंज के हवालात में मुझे पता चला कि टीचर्स ट्रेनिंग कालेज के स्नातक के रूप में मेरा चयन भी हो गया है।

अगर मैं पत्रकारिता के क्षेत्र में न आया होता तो राजनीति के झमेले में इस प्रकार सीधे सीधे न पड़ा होता। अगर मैं पत्रकारिता के क्षेत्र में न आया होता तो कविता लिखने का और शीघ्रता से प्रकाश में आने का अवसर मुझे न मिला होता। पत्रकारिता ने मुझेपरावलम्बन से मुक्ति दिलाई और मुझको इसने स्वावलम्बी बनाया। पत्रकारिता ने मुझमें आत्म-विश्वासका भावजगा दिया। पत्रकारिता ने कष्ट सहिष्णु बनाया, कठिनाइयों से जूझने का साहस दिया और कम पैसों में सुख तथा शक्ति से ससम्मान जीना बतलाया। मेरी सारी शक्तियाँ और मेरे सम्पूर्ण साधन बिखर गये होते अगर यह पत्रकारिता मुझे न सम्हालती। इसी के चलते मैं एम.ए. हो सका। इसी के होते मैं साहित्यरत्न की उपाधि प्राप्त कर सका और आजादी की लड़ाई का वीर सिपाही था। इसी के नाते टीचर्स ट्रेनिंग कालेज में मेरा सलेक्शन हो गया। मुझे साहित्यिक और कवि के रूप में





इसी ने जीवन-जगत में उतारा। जब कभी जीवन सागर में टूट कर मैं अपने को हारा हुआ समझता था उस समय यह पत्रकारिता ही पत्नी के समान शीतल जल लेकर खड़ी रहती थी मेरी प्रतीक्षा में और अपने ओँचल की छांह में मुझको पुनः शक्ति संचय का अवसर देती थी। हिन्दी दैनिक 'संसार' से हटकर मैं चेतगंज की हवालात में बन्द था और सभी समाचार पत्रों में मेरी गिरफ्तारी का समाचार मोटी सुखी में छपा-'प्रसिद्ध गीतकार मोती बी.ए. भारत रक्षा कानून में नजरबन्द'।

पत्रकारिता ने क्या नहीं दिया ? पत्रकारिता ने क्या नहीं किया ? पत्रकारिता ने भारत को स्वाधीनता दी। पत्रकारिता ने स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय भूमिका अदा की। देश गुलाम रहा पत्रकारिता आजाद रही।

पत्रकारिता ने लोकतंत्रा की स्थापना की। इसको नष्ट होने से बचाकर पुनः इसकी स्थापना की। पत्रकारिता ने साहित्य का सृजन, पोषण और संवर्द्धन किया। पत्रकारिता ने देश का उत्थान किया और संसार की दृष्टि में देश का माथा ऊँचा किया। इसको अन्तर्राष्ट्रीय जगत में सम्मानित स्थान दिलाया। पत्रकारिता ने गहन अन्धकार में प्रकाश की किरणों को उतारा। जीवन को जीने योग्य बनाया।

मुझे भी इसने बहुत कुछ दिया। जिस डिग्री हेतु युनिवर्सिटी में मैं ठोकर खाता फिरा, निवृत्त की भिक्षा माँगता रहा, भूखे प्यासे रहकर भी कहीं आश्रय न पा सका उस डिग्री को प्यार से, दुलार से और सम्मान स्वाभिमान से पत्रकारिता ने उपहार स्वरूप प्रदान किया। कविता को उसके योग्य किला दिया। स्वतंत्रता आन्दोलन में जेल और हवालात के दर्शन कराए। फ़िल्म जगत की सैर कराई। मंच दिया और मंच पर सफलता दी। पत्रकारिता न होती तो सारा गुण व्यर्थ हो गया होता। देश गुलाम ही बना रहता और देशवासी कैदी ही रहे होते।

यही पत्रकारिता समय की खूबी से आज ऐसी और इतनी बदल गयी है कि इसकी शक्ति पहचानी नहीं जाती। विज्ञापन के चकाचौंध में वह खो गयी है। औरतों की नंगी और रंगीन तस्वीरों को छापने की होड़ लगी हुई है। पूँजीपतियों ने भी खोल दिए हैं बन्द खजाने। पत्रकारिता अब अपने दोनों हाथों से धन बिटोरने के काम में लग गयी है। जिस समाचार पत्र का दाम एक रुपया दस पैसा है उसी का दाम दूसरा समाचार पत्र एक रुपया सत्तर पैसा वसूल करता है जबकि उसमें समाचार या नीतिगत ज्ञान की बातें शून्य होती हैं और उद्योगपतियों एवं सरकारी तन्त्रों के भड़कीले विज्ञापनों का बाजार गर्म रहता है। जहाँ तहाँ से अड़ियल सड़ियल समाचार बिटोर कर तीन चार पन्ने पाठकों के लिए और सात पेज विज्ञापन उद्योगपतियों और व्यवसायियों के लिए





यही पत्रकारिता समय की खूबी से आज ऐसी और इतनी बदल गयी है कि इसकी शक्ति पहचानी नहीं जाती। विज्ञापन के चकाचौंध में वह खो गयी है। औरतों की नंगी और रंगीन तस्वीरों को छापने की होड़ लगी हुई है। पूँजीपतियों ने भी खोल दिए हैं बन्द खजाने। पत्रकारिता अब अपने दोनों हाथों से धन बिटोरने के काम में लग गयी है। जिस समाचार पत्र का दाम एक रुपया दस पैसा है उसी का दाम दूसरा समाचार पत्र एक रुपया सत्तर पैसा वसूल करता है जबकि उसमें समाचार या नीतिगत ज्ञान की बातें शून्य होती हैं और उद्योगपतियों एवं सरकारी तन्त्रों के भड़कीले विज्ञापनों का बाजार गर्म रहता है। जहाँ तहाँ से अड़ियल सड़ियल समाचार बिटोर कर तीन चार पन्ने पाठकों के लिए और सात पेज विज्ञापन उद्योगपतियों और व्यवसायियों के लिए छपा करते हैं।

निश्चित उद्देश्य से निश्चित दिशा में नियोजित-क्रियान्वित शक्ति का नाम सम्पादक है। महावीरप्रसाद द्विवेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, बाबूराव विष्णुराव पराड़कर, बनारसी दास चतुर्वेदी एवं अन्यान्य अनेक विभूतियां समय समय पर अवतरित होकर विचारों और कार्यों को एक दिशा देकर जीवन जगत को प्रगति पथ पर अग्रसर कर तिरोहित हो गयी। प्रकृति स्वयं शक्तियों को उत्पन्न करती है और इनसे अपना अभीष्ट सिद्ध करती हैं जिसके चलते जीवन है संसार है और युग है। पत्रकारिता अपने आप में एक आन्दोलन है। इसकी शक्ति से बड़े बड़े दिग्गज भी थर्हा उठते हैं किन्तु इसका कुछ विगाड़ नहीं सकते प्रत्युत इसके आगे झुकने को विवश हो जाते हैं।

इस महान शक्ति की छांह में मैं मात्रा अपनी तपन शांत करने के निमित्त जीवन यात्रा में कुछ देर के लिए रुक गया था। पत्रकारिता मेरे जीवन का लक्ष्य नहीं थी। किन्तु जितने दिन, जितने महीने और जितने वर्ष मैं जीवन शक्ति इस वायुमण्डल से अर्जित करता रहा वह मेरे जीवन का स्थायी अंग बन गया। मेरा संस्कार हो गया एक नया और मैं जीवन भर अपने को सम्पादक तथा पत्रकार समझता रहा हूँ।

अंग्रेजी के प्रवक्ता (महादेवी वर्मा के अनुज) डॉ. मनमोहन वर्मा के अधीन कालेज पत्रिका के सम्पादन का, इण्टरमीडिएट कक्षा द्वितीय वर्ष में, सन् 1936 में प्रथम अनुभव हुआ था। शम्भूनाथ सिंह की प्रेरणा से अग्रगामी, आज, आर्यावर्त और संसार जैसे सुप्रसिद्ध दैनिक समाचार पत्रों में सम्पादकीय विभाग में वर्षों सेवारत रहा। अध्यापक जीवन में श्रीकृष्ण इण्टर कालेज, बरहज में कालेज पत्रिकाओं का सम्पादन जिस उत्तमता से किया उसकी बड़ी प्रशंसा हुई। अवकाश प्राप्ति के उपरान्त जब अपने छोटे पुत्र अंजनी कुमार की बेकारी दूर करने के लिए घर में ही प्रेस बैठाया तो एक मासिक पत्रिका 'संपदा' नाम से प्रकाशित किया। इसकी भी सर्वत्रा प्रशंसा हुई।





आत्मकथा मोती बीए-पत्रकार जीवन के अनुभव



त्रिलोचन, शम्भूनाथ, रामदरस, क्षेमचन्द्र 'सुमन', बेकल 'उत्साही', सत्येन्द्र शर्मा, पं.गणेश चौबे, नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, श्री कृष्ण राय 'हृदयेश', नर्मदेश्वर उपाध्याय, कैलाश 'कल्पित', आर एस सिंह, रामशंकर द्विवेदी, रमाशंकर पाण्डेय, डॉ.स्वर्ण किरण आदि अनेक विद्वानों, कवियों का सहयोग मिला। लोकप्रिय और चर्चित हुई 'संपदा' किन्तु दो ही ढाई अंकों के प्रकाशनोपरान्त इसका प्रकाशन बन्द हो गया और प्रेस कर्मियों के बेढंगेपन से प्रेस का काम ठप्प पड़ गया। तीस-पैंतीस पुस्तकों का प्रकाशन और सम्पादन मैंने स्वयं किया। व्यवसाय की दृष्टि से मेरे कार्य नगण्य हैं लेकिन इस दृष्टि से मेरी यह सक्रियता महत्वपूर्ण है कि मेरे इर्द-गिर्द लेखन, प्रकाशन, सम्पादन, मुद्रण का एक दिव्य वायुमण्डल तैयार हो गया जो सुखद और शान्तिप्रदायक है। पत्रकारिता ने जीवन के आरम्भ में जो सहारा मुझे दिया वही अब मेरी जीवनी शक्ति हो गयी है। लघु पत्रिकाओं में एवं लघु प्रकाशनों में मेरी आत्मिक प्रसन्नता है क्योंकि यही मेरी जाति है। बड़ा और व्यवसायिक होना नहीं, जीवन्त और प्रसन्न मनुष्य होना लक्ष्य है।





बी.ए.तक मेरी शिक्षा कायदे की रही। बड़े भाई साहब पर परिस्थितियों के दबाव का बोझ पड़ता रहा। मुझे सम्हालते हुए वे परिस्थितियों से लड़ते रहे। बी ए की उपाधि प्राप्त कर लेने के बाद वास्तविकता से जूझने को हम दोनों मजबूर हुए। ऋण भार के नीचे दबा कराहता हुआ घर सिवा आशीर्वाद देने के हम लोगों के लिए किसी काम का नहीं रह गया था। पिताजी अमानत से जो कुछ भी कमाते थे, साहु-महाजन सूद में हड्डप जाते थे। जब तक वे कुछ और कमाएं तब तक पुनः सूद की रकम जवान हो जाती थी। चाचा जी (भइया जी) गृहस्थी की देखभाल करते थे मगर खाली हाथ वे कुछ कर नहीं पाते थे। यहां तक कि खेती से परिवार के भरण पोषण योग्य अन्न भी उपलब्ध नहीं हो पाता था। गृह कलह, अवसाद, अशान्ति का राज्य था। अक्सर भइया जी संगीन परिस्थितियों में गृह त्याग दिया करते थे और जो घर पर रहता था उसी को यह सब देखना सुनना पड़ता था। ऐसे में नियमित पढ़ाई कैसे चल सकती थी? यही अच्छा था कि कौन कहां क्या करता है, कोई पूछने वाला नहीं था। जिसके जी में जो आये बन जाये, इसकी पूरी आजादी थी। यही स्थिति कुलीनता की पूरी कसौटी है। इसी स्थिति में धर्म की पहचान हो जाती है। परम्परा यहीं पर काम आती है। माँ की ममता, पिता-पुत्र सम्बन्ध, पति-पत्नी सम्बन्ध, भाई-बहिन सम्बन्ध, समस्त पारिवारिक एवं सामाजिक मान्यताएं, मानवता के शाश्वत मूल्य जब इस कसौटी पर खरे साबित होते हैं तभी कुलीनता सनाथ होती है और परम्परा इन्हीं संघर्षों के मध्य विकास के पथ पर अग्रसर होती है। अनुकूल अथवा विपरीत परिस्थितियों में जो तत्व अपरिवर्तित रहते हैं उन्हीं को सनातन, शब्द-बुद्ध कहा जाता है। इसी को बेहिचक धर्म कहते हैं। संगठित अवस्था में यह स्थिति गौरवपूर्ण परम्परा स्थापित करती है और विघटित होकर इसी शुद्ध बुद्ध सनातन धर्म की अनेकमुखी धाराएं प्रवाहित होने लगती हैं किन्तु सभी धाराओं में जल का स्वाद अपरिवर्तित ही रहता है। यही कुलीनता का वास्तविक स्वरूप है।

मेरी धर्मपत्नी ने खुशी से अपना सोने का कण्ठहार और सोने की माला मांगे जाने पर उतार कर भइया जी को दे दिया कि इसे बेचकर पतिदेव का युनिवर्सिटी एम.ए. कक्षा में नामांकन करा दिया जाय। मेरा नाम एम.ए.और कानून के त्रिष्णीय कोर्स में लिखा तो गया लेकिन अग्रिम व्यय की कोई व्यवस्था नहीं हो पाई जिससे मैं न तो कानून ही पढ़ सका और न कायदे से एम ए ही करने पाया। काशी के अपने जीवन से जूझने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं रह गया था। इसी तपती जलती रेत में मुझे कविता की हरियाली और पत्रकारिता का जलस्रोत दीख पड़ा। ‘तनी अउरी दउर हिरना पा जइब किनारा’ की दशा थी। हिरन दौड़ने को विवश था क्योंकि वह बहुत प्यासा था और ‘भीतर बा पियासि ऊपर बरिसेला अंगारा’ दौड़ को अधिकाधिक





आत्मकथा मोती बीए-उपाधियों का संघर्ष



प्रखर और तीव्र बना रहा था।

रुइया हास्टल (ए ब्लाक) में जब तक डटे रहने का अवसर मिला तब तक जमकर डटा रहा। बचपन से ही भावपूर्ण ढंग से अपने तरन्नुम में सुन्दर सुन्दर खड़ी बोली हिन्दी की कविताएं गाने की मेरी आदत बन गयी थी। मैं हमेशा ही कुछ न कुछ गुनगुनाता रहता था। आज भी यही दशा है। इसीलिए कभी मैंने एक गीत लिखा था जो साप्ताहिक 'आज' में सन् 1945-46 में प्रकाशित हुआ था- 'बिना गीत गाए न मैं जी सकूँगा'। अगर यह गुनगुनाहट न होती तो दर्द के मारे मेरी छाती जखर फट गई होती। बच्चन जी की 'मधुशाला' मुझे पूरी याद थी। 'मधुकलश', 'मधुशाला', 'निशा निमंत्रण', एकान्त संगीत सम्पूर्ण कण्ठस्थ था। भोजनोपरान्त कमरे के सामने बाहर मैदान में चौकी डालकर 'सुराजी मधु पी कर मधुपान', 'रही बुलबुल डालों पर बोल', ऊँची आवाज में गाता रहता था। निश्चय ही मेरी आवाज बिड़ला हास्टल के ब्लाक तक पहुँच जाती थी।

कण्ठस्थ और हृदयस्थ तो अनेक काव्य ग्रन्थ थे यथा-लहर, झरना, आँसू (प्रसाद), मुकुल (सुभद्रा कुमारी चौहान), नीहार, रश्मि, नीरजा (महादेवी), जयद्रथ बध (मैथिलीशरण गुप्त), युगान्त और ग्राम्या (पन्त), रसवन्ती (दिनकर), निराला जी की अनेक कविताएं (जूही की कली का तो मुझ पर नशा हर घड़ी रहता था), भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, (कब मिलेंगे प्रवासी के गीत), अज्ञेय (पूछ लूं मैं नाम तेरा), तुम अमर बढ़े चलो (पण्डित श्यामनारायण पाण्डेय)। सामयिक पत्र-पत्रिकाएं पढ़ता रहता। नए प्रकाशित काव्य ग्रंथों की ललक रहा करती थी, किन्तु मुझे सबसे अधिक अनुराग बच्चन जी की कविताओं से था। निराला जी और सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताएं और महादेवी जी की भी कुछ कृतियाँ जिहांग्र रहा करती थीं। जीवन संघर्ष में जूझते हुए सभी कविताएं गुनगुनाहट के रूप में अभ्यन्तर से निःस्तुत होती रहती थीं। किन्तु जब तक मैं खुलकर बच्चन जी की इन पंक्तियों को-

सुरीले कण्ठों का अपमान
जगत में कर सकता है कौन
स्वयं लो प्रकृति उठी है बोल
विदा कर अपना चिर व्रत मौन।
अरे मिट्टी के पुतलों आज
सुनो अपने कानों को खोल
सुराजी मधु पी कर मधुपान
रही बुलबुल डालों पर बोल।





गा नहीं लेता था तब तक मेरी आत्मा में एक बेदैनी सी बनी रहती थी। ये पंक्तियां मेरे संघर्षमय जीवन में सतत् प्रेरणा और उत्साह का भाव भरती रहती थीं। इन्होंने मुझे नीरस, उग्र और प्रचण्ड होने से बचाया। इन पंक्तियों ने मेरी पाश्विकता को दूर कर मेरी चेतना को निखारा। कविताओं के दुर्ग से नर्यी शक्ति प्राप्त कर मैं जीवन समर में सर्वदा जूझता रहा।

मालवीय जी महाराज के पण्डों ने मुझे शुल्क निवृत्ति का वरदान प्राप्त नहीं करने दिया किन्तु देव दर्शन के पुण्य से ये पण्डे भक्त को कब विरत कर सकते थे। संघर्ष में विजयी होने का वरदान देवता ने उन्मुक्त हृदय से दिया। इस पञ्चति पर दलालों, पण्डों और चमचों का कोई जोर नहीं चलता है। भक्त और भगवान के बीच दुनियादारी और चोरबाजारी नहीं चलती है। यदि संकल्प सत्य है और यदि उसके प्रति पूर्ण निष्ठा है तो बीच की ये सबमायावी भूताकार दीवालें थुँए के बादल जैसी हवा के एक ही झोंके में उड़ जाती हैं। एम.ए. की परीक्षा अच्छे अंक प्राप्त कर ससम्मान मैंने उत्तीर्ण की। शुल्क निवृत्ति का कोई प्रश्न ही नहीं उपस्थित होने पाया। पूर्ण शुल्क अदा किया गया। बच्चन जी की पंक्ति-

नाव नाविक फेर ले जा
है नहीं कुछ काम इसका
आज लहरों से उलझने को
कड़कती हैं भुजाएं।

नस नस में तूफान बनकर गरज रही थीं। संकल्प जो कर लिया गया तो 'शरीर पालयामि वा कार्य साधयामि' की स्थिति ही निर्णायक हो जाती है। किस प्रकार एम.ए.की परीक्षा मैंने दी इसी आत्मकथ्य में अन्यत्र सविस्तार बताया जा चुका है। इस प्रसंग में यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि 15 जनवरी 1941 में 'आज' प्रेस की, रात की ड्यूटी वाली नौकरी से, अवकाश लेकर मैंने केवल एक महीने में किसी प्रकार दो वर्ष का कोर्स तैयार किया।

तथापि वे दिन हमेशा याद रहते हैं। पूरी रात जागकर टेलीप्रिंटर से प्राप्त (अंग्रेजी में) समाचारों का हिन्दी में अनुवाद करना, प्रूफ देखना, मेकअप करना, मशीन पर प्रस्तुत फर्मा का आखिरी प्रूफ देखना, केवल पचीस रूपया मासिक वेतन पर कबीर चौरा से भदैनी पदयात्रा करना, शयनादि का कोई प्रबन्ध न होना, दस बजे रूइया हास्टल के मेस में एक ही वक्त भोजन करना, ग्यारह बजे से साढ़े तीन बजे तक युनिवर्सिटी में ध्यानपूर्वक नित्य अध्ययन करना, पुनः भदैनी अपने कमरे में आना, थोड़ा बहुत आराम और साधारण नाश्ता करके पैदल ही कबीरचौरा साढ़े नौ बजते बजते 'आज' कार्यालय पहुँच जाना और साढ़े तीन बजे रात तक ड्यूटी बजाना,





चाहे आँधी हो या पानी, गर्मी हो या बरसात, कितनी हूँ कड़ाके की पड़ती हो धूप, दैनिक समाचार पत्र में यदि काम करना है तो उन्हें बाधा नहीं समझना है। शरीर ने मेरा पूरा साथ दिया। इस्पाती मन टूटने वाला था नहीं। बड़ी शान्ति और बड़े धैर्य से दिन बीत रहे थे। दिन में (एक बार) इतिहास की कक्षा में डॉ.राजबली पाण्डेय की आशीर्वादयुक्त मुस्कान और प्रसाद रूप वाणी से ही जैसे कि गंगा स्नान का पुण्य फल प्राप्त हो जाता हो। मेरे नस-नस में विद्युत तरंग लहरा उठती थी। उन्हीं के आदेश पर 15 जनवरी से मैंने 'आज' प्रेस से अवकाश लिया और अध्ययन कार्य में उसी वेग से उसी शक्ति से रत हुआ जिसमें समाचार पत्र की इयूटी पर जाता रहा। दो दिन के लिए मैं अपने गाँव आया अपनी बहिन की विदाई के अवसर पर और पुनः काशी में अपने अध्ययन के मोर्चे पर डट गया।

डॉ.राजबली पाण्डेय के संरक्षण में ऐतिहासिक स्थानों को देखने के लिए स्नातकों का एक दल तैयार हुआ जिसमें पाण्डेय जी ने मुझे भी सम्मिलित कर लिया। रेल विभाग से भाड़े में कन्सेसन की सुविधा प्राप्त थी। महानगरी बम्बई का प्रथम दर्शन करने का सौभाग्य मिला। समुद्र में कुछ दूर स्टीमरशिप से सफर करना, एलीपफेण्टा की गुफाओं में मूर्तियों का निरीक्षण करना एक सपना सा लग रहा था। कितना बड़ा रोमांस मेरे द्वारा कोई खेल रहा था। यह कविता का ही प्रतिपाद्य हो सकता है। कहाँ मैं कहाँ मेरा संघर्ष और कहाँ यह विराट संसार ? उसके ऊपर के तथ्यों की ओर उन्मुख होना पुनः कविता का विषय हो जाता है। मुझमें रहकर कोई जब मुझसे ही खेलना चाहे तो मैं क्या रुठा रहूँ ? मैं भी क्यों न उसी के साथ रसूँ और जीवनकायह सम्पूर्ण खेल हँसते हँसते क्यों न खेल डालूँ ? अजन्ता की गुफाओं में सदियों से सुरक्षित अमर चित्रों के दर्शन का सुख, देवगिरि के दुर्ग पर राजा रामचन्द्र और शंकरदेव के वीर सैनिकों की काल्पनिक पंक्ति में अपने को सज्जित देखने का आह्लादा। ऐलोरा के कैलाश मन्दिर की परिक्रमा का पुण्य, भाजा और काले के चैत्यों का निरीक्षण, औरंगाबाद में औरंगजेब की समाधि का अवलोकन करते हुए आलमगीर की बीस वर्षों की दक्षिण भारत में की गयी निष्फल तपस्या की झलक। पूना का रेसकोर्स, पूना में स्थापित घोड़े पर सवार वीर शिवाजी की मूर्ति, पूना और कल्याण के बीच की ऊँची नीची पहाड़ियों और सुरंगों के मध्य से भागती रेलगाड़ी की यात्रा का पुलकन। मात्र कुछ दिनों की इस यात्रा में 6 महीनों की कबीर चौरा से भदैनी और भदैनी से युनिवर्सिटी तक की अप-डाउन की मेरी दैनिक पद यात्रा में कोई ताल-मेल बिठाए। इस यात्रा में मैंने लोनावाला से भाजा चैत्य तक तीन चार मील की बैलगाड़ी की यात्रा में डॉ.राजबली पाण्डेय को बैलगाड़ी हाँकते हुए देखा और बिरहा गाते हुए सुना। उन्होंने अपने सिर पर पगड़ी बाँध रखी थी। उस महामानव की छवि स्थाई





सूर्ख से हृदय पटल पर अंकित हो गई। वैसे तो वे अपने थे। उनका मेरे ऊपर कोई विजातीय प्रभाव नहीं पड़ता था। किन्तु यहां पर यह उल्लेख आवश्यक है कि कभी कभी अपनों को पहचानने में हम चूक जाते हैं। अपने भी अपनों का सही मूल्यांकन नहीं कर पाते हैं। महामानव डॉ. राजबली पाण्डेय इस अवस्था से सर्वथा ऊपर थे। वे स्वयं की एक किरण थे। जिन लोगों ने उस किरण को प्रणाम किया है वे धन्य हैं। यदि डॉ. राजबली पाण्डेय की वरद छाया मुझ पर न रही होती तो मैं मात्र मोती बी ए ही रह गया होता। फिर मुझसे यह सवाल कोई नहीं कर पाता कि आप एम ए होकर अपने को बीए क्यों लिखते हैं? पाण्डेय जी की ही कृपा के कारण मैं इतिहास से एम ए कर सका। पूर्ण अध्ययन और अपेक्षित योग्यता अर्जित करके, मात्र आशीर्वाद से नहीं। आशीर्वादमें चरित्र बल उत्पन्न करने की शक्ति होती है। यदि आशीर्वाद से चरित्र का यह बलन प्राप्त हो और अन्य अनेक इतर उपलब्धियों की प्रतीति का पहाड़ लदता जाए तो मैं इसे आशीर्वाद नहीं एक भयंकर घड़यन्त्र कहूँगा। डॉ.पाण्डेय में चरित्र बल उत्पन्न करने की क्षमता थी। वे असाधारण व्यक्ति थे।

इतिहास यात्री दल की इस यात्रा की एक दूसरी बड़ी उपलब्धि थी पूना में सौभाग्य से अपने विभागाध्यक्ष श्री कृष्ण व्यंकटेश पुणताम्बेकर का दर्शन। पुणताम्बेकर जी प्रतिभा और विद्वता के पुंज थे। वे प्रखर तेजस्वी देवता थे। उनका हृदय निर्मल गंगा की धारा था। ऊपर से वे बड़ेही कठोर दीखते थे। अनुशासन और विनय को जीवन में वे सबसे ऊँचा स्थान देते थे। अपने इन्हीं गुणों के कारण वे विभागाध्यक्ष थे, यद्यपि उनके अन्तर्गत डाकट्रेट की डिग्री वाले इतिहास के विद्वान भी सेवारत थे। उनके साथ पूना में अनेक विशिष्ट अध्ययन केन्द्रों को देखा गया जहां अवस्था प्राप्त वयोवृद्ध मनीषी शान्त और दत्तचित्त, अध्ययनरत, देवतातुल्य प्रतीत हो रहे थे। भारतवर्ष विद्या की खान है। इसकी महिमा अनन्त है। अध्ययन केन्द्र में प्रवेश करते ही यह भावना प्रबल हो उठती है। गोपाल कृष्ण गोखले, महादेव गोविन्द रानाडे, बाल गंगाधर तिलक, वीर सावरकर जैसे ज्योतिर्मान नक्षत्र ऐसे ही लोक में अवतीर्ण होते हैं। पराधीनता के युग का हमारा भारत टूटा नहीं था। भीतर से बड़ा शक्तिशाली था। उसकी आध्यात्मिक शक्ति आदिकाल से ही ज्यों की त्यों थी। आश्चर्य है स्वतंत्र होने पर हम भीतर से क्यों इतनी तेजी से खोखले होते जा रहे हैं? सम्भवतः राजनीतिक उथल-पुथल जनित व्यतिक्रमों से भयभीत एवं आशंकित होकर यह भावना बन रही हो। हमारा वैभवशाली भारत कभी विपन्न नहीं हो सकता यद्यपि इसके ऊपर गैर तो गैर स्वयं अपने ही लोग निरन्तर दुर्बुद्धिपूर्ण घातक प्रहार करते जा रहे हैं। पूना से जो विश्वास लेकर हम काशी आये वह आज भी अभ्यन्तर में अखण्ड दीपक के समान प्रज्ज्वलित है। जीने का यह एक





सवाल सहारा है।

पुनःमोर्त्वे पर। इस बार पूर्व योजना में परिवर्तन किया गया। अर्जुन भाई भी इसी प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति से एम ए की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव एम ए (अंग्रेजी) हमारे पूर्व परिचित एवं कवि मित्र थे। अपने छंग की एक विशेष व्यवस्था में वे लंका पर रहते थे। उन्हीं के साथ या आस-पास अर्जुन भाई और मैंने भी अपने खाने पीने की निजी व्यवस्था की। अपने हाथ से भोजन बना लेते थे और चौका बर्तन भी कर लेते थे। इसके बाद का सम्पूर्ण समय अध्ययन में लगाते थे। 18 घंटे से कम तो कभी पढ़ते ही नहीं थे। कभी कभी दो दो तीन दिन तक अखण्ड अध्ययन भी होता था। शम्भुनाथ सिंह प्रायः नित्य ही हम लोगों से मिल लिया करते थे। हम लोगों का यह संघर्ष देखकर उन्हें सुख होता था। इससे हमारा मनोबल और भी बढ़ जाता था। हमारे पिताजी ने एकमुश्त 100 रु खर्च के लिए हमारे पास भेज दिया था। हमारे एक सम्बन्धी ने भी 60 रु की सहायता की थी। कभी कभी सिर चकराने लगता था। पुस्तक यद्यपि खुली होती थी मगर उसमें का एक भी अक्षर स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ता था। मुझे याद है शम्भुनाथ सिंह के स्नेह की। ऐसे में यदि वे आ जाते थेतो प्रेम से सिर पर हाथ फेरते थे। इससे बड़ी राहत मिलती थी। फरवरी के प्रथम सप्ताह से अध्ययन का यह क्रम 15 मार्च तक चला। इस अध्ययन से मुझे पूर्ण सन्तोष है। निर्धारित विषय विस्तार का एक भी कोना प्रकाशित हुए बिना नहीं रहा। सभी मूल ग्रन्थों एवं बड़ी बड़ी पोथियों को केवल सुड़का नहीं, बुद्धि में धुलाकर आत्मसात कर लिया। भारतवर्ष के 700 ई से 1200 ई तक के इतिहास पर मेरा विशेष अधिकार था। डॉराजबली पाण्डेय इस खण्ड को पढ़ाते थे। इस युग के एक भी राजवंश का इतिहास उपेक्षित नहीं रहा। परीक्षा उत्तीर्ण करने के उद्देश्य से टुकड़े टुकड़े में अध्ययन नहीं किया गया था। वास्तवमें ज्ञानवर्जन को उद्देश्य बनाकर ही यह धोर तपस्या ठानी गई थी। यदि मात्र परीक्षा में उत्तीर्ण होना लक्ष्य रहता तो हमारे सहपाठी श्री प्रभाकर ठाकुर का तैयार किया हुआ नोट ही यथेष्ट था क्योंकि दो वर्ष नियमित अध्ययन करने के उपरान्त भी उन्होंने अपनी नियमित परीक्षा छोड़कर प्रथम श्रेणी की लालसा से (जो उन्हें प्राप्त नहीं हुआ) एक वर्ष का समय और लिया था। उन्होंने भी हमारी बड़ी मदद की थी। तीन वर्ष का उनका नियमित अध्ययन और तीन वर्ष की हमारी अनियमितता के नीचे दबी अध्ययन की तीव्र आकांक्षा अपने अपने मार्ग से एक ही विन्दु पर पहुंची। वे भी उच्च द्वितीय श्रेणी में और मैं भी उन्हीं के मुकाबले उन्हीं की श्रेणी में परीक्षा सिन्धु के उस पार पहुंचा। हमारे एक दूसरे सहपाठी बन्धु ओझा जी थे। वे भी प्रथम श्रेणी के ही चक्कर में थे। मगर हम तीनों दो एक अंक के हेरफेर से एक ही श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। हमारे विभागाध्यक्ष ने प्रसन्न



आत्मकथा मोती बीए-उपाधियों का संघर्ष



होकर जो अपना टेस्टीमोनियल मुझे दिया उसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से इस तथ्य को स्वयं लिखा। प्रथम श्रेणी मुझे कैसे प्राप्त होती ? मेरी तैयारी और व्यवस्था ही क्या थी ? मुझे अपनी इस उपलब्धि पर असन्तोष भी क्यों हो ? मैं तो फल की लालसा से विरत होकर केवल कर्माधीन घोर युद्धरत था। कर्माराधना का सुख मुझे मिला। इस तपस्या का यही पुण्य फल था। मेरे जीवन से फलासक्ति हमेशा हमेशा के लिए मिट गयी। मैंने पसीने को ही गंगा के रूप में प्राप्त किया और सुख की नींद मेरे लिए सपना हो गयी।

दर्द का हृद से गुजरना है दवा हो जाना। आगे चलकर मैंने अपनी कविता में एक छन्द लिखा-

दुःख जब इतना मन भायेगा
एक दिवस ऐसा आयेगा
द्वार खड़ा सुख पछतायेगा
उदासीन आँखों में बैठा,
मौन बना गम्भीर
जीवित रहकर सह न सकूँगा
मैं जीवन की पीर ।

अपनी कविता में एक स्थल पर अन्य प्रकार से यही भाव व्यक्त हुआ है-

शपथ तुम्हारी इस जीवन में
अगर रात मैंने जानी हो
तुम सुन्दरता की रानी हो ।

मेरी भोजपुरी की 'मृगतृष्णा' कविता में मेरे इसी जीवन की एक झांकी प्रस्तुत करती है-

तनी अउरी दऊर हिरना
पा जइब किनारा ।

अपने जीवन के सम्पूर्ण संघर्ष को और इसकी सारी उपलब्धियों को मैंने एक अत्यन्त छोटी सी पंक्ति में इस प्रकार सूत्रबद्ध किया है-

पीड़ा अपने ही पथ से पहुँची अपने घर।

फिर तो आशा-निराशा की इस द्वन्द्वात्मक स्थिति से ऊपर उठकर मैंने एक गीत गाया-

मुझे निराशा प्राणों से भी प्यारी
इसी निराशा ने उर-अन्तर
स्मृति का दीप जलाया





इसी निराशा ने विरही को
प्रिय का भवन दिखाया
आँखों में जल रही ज्योति बन
प्रिय पथ की अँधियारी
मुझे निराशा प्राणों से भी घारी।

‘साहित्यरत्न’ की उपाधि भी इसी प्रकार प्राप्त की। सन् 1942 में ‘आर्यावर्त’ कार्यालय पटना से भागकर गांव पहुंचा। परमहंसाश्रम बरहज (देवरिया) में राष्ट्रभाषा विद्यालय के कर्ता-धर्ता पंसिंहासन त्रिपाठी ‘कांत’ से भैंट-वार्ता में ‘साहित्यरत्न’ की भी उपाधि प्राप्त करने की अभिलाषा जाग गयी। आवश्यक शुल्क जमा कर दिया गया और सभी आवश्यक कारबाई पूरी हो गयी। अब मुझे नियमित अध्ययन करना था किन्तु आवास और भोजन की व्यवस्था न होने से अध्ययन कार्य में बाधा पड़ने लगी। स्थानीय किंग जार्ज हाईस्कूल में एतदर्थ अध्यापक होकर संकल्प पूर्ण करने की योजना बनाई। किन्तु यह सभी कुछ योजनापूर्ति में सहायक नहीं बाधक ही बनता प्रतीत होरहा था। कारण राष्ट्रभाषा विद्यालय में एक दिन भी पढ़ने का अवसर नहीं मिल पाता था। इससे कुछ होकर मैंने यह योजना ही त्याग दी। तीन चार दिनों तक यह खिचड़ी पकाई, किन्तु जब धूँए से आँखों के आगे अन्धेरा बढ़ने लगा तो यह हाँड़ी पतुकी जहां की तहां छोड़ छाड़कर मैं पुनः काशी में ही अपने सधे-सधाये व्यायाम में प्रवृत्त हो गया। तत्काल म्युनिसिपल हाई स्कूल में 60 रु महीने पर अस्थायी रूप से डेढ़ महीने तक अध्यापन का कार्य किया। यहाँ पं. शुकदेव चौबे (अर्जुन चौबे और सरयू प्रसाद चौबे के ज्येष्ठ भ्राता) और पं. हरिहर पाण्डेय के सम्पर्क में रहने का अवसर मिला। सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव भी यहाँ अध्यापक थे। डेढ़ महीने के उपरान्त डॉ. राजबली पाण्डेय के सुझाव पर मैं लंकामें स्थित देवरिया के सलेमगढ़ राज्य के तीन अध्ययनरत राजकुमारों का गर्जियन ट्रूटर बन गया। इनमें आनन्देश्वर प्रसाद सिंह सबसे बड़े थे। इनको और छोटे बच्चों को मैं सुबह-शाम पढ़ाता था। पाण्डेय जी ने यह सुझाव इसलिए दिया था कि शेष समय में मैं पी-एच.डी की तैयारी भी करता रहूँगा।

किन्तु मनुष्य सोचता है कुछ और, उसके लिए ईश्वरीय विधान रहता है कुछ और। मैं भी चाहता था कि पी-एच.डी करना और पाण्डेय जी भी चाहते थे कि मैं इतिहास में डाक्ट्रेट उपाधि प्राप्त कर लूँ। किन्तु एक ही महीने में मैं अपने गर्जियन ट्रूटरी के पद से ऊब गया। कारण यह था कि राजकुमारों की सेवा में जो तीन चार कर्मचारी थे वे मुझे भी अपने ही समान इन राजकुमारों का नौकर समझते थे। मुझे प्रत्येक क्षण आत्महीनता का भाव सताता था। अपनी ही नजरों





मैं मैं अपने को गिरा हुआ समझने लगा। इधर राजा साहब के नौकरों ने मेरी शिकायतों का बाजार भी गर्म कर दिया। मेरे परोक्ष में मेरी कटु आलोचना होती थी और प्रत्यक्ष में मेरी अवमानना। वैसे मैं नित्य भोर में उठता। राजकुमारों को भी नौकरों से कहकर जगवाता। उन्हें कुछ दूर तक अपने साथ टहलने के लिए ले जाता, दौड़ता स्वयं और दौड़ाता भी था उन्हें। फिर नाश्ता पानी जब ये बालक कर लेते तो पढ़ने बैठ जाते थे। मैं सबसे छोटे बालक को हिन्दी, अंग्रेजी, गणित आदि विषय पढ़ाता। भोजन की थाली राजा साहब के ही मेस से नौकर ला देते थे। फिर मैं युनिवर्सिटी की ओर चला जाता था। ये लड़के भी अपने अपने विद्यालय को पढ़ने के लिए चले जाते थे। सन्ध्या के बाद मैं सबसे ज्येष्ठ राजकुमार आनन्देश्वर सिंह को, जो इण्टरमीडिएट के छात्र थे उनके विषय पढ़ाता था। यह सब कुछ होता रहा लेकिन मेरा मन यहां टिकता नहीं था। इसी स्थिति में मैदागिन के चौराहे पर 'आज' प्रेस के व्यवस्थापक श्री बलदेव दास गुप्त से मेरी वार्ता हुई और मैंने 'संसार' हिन्दी दैनिक के सम्पादकीय विभाग में कार्य करना स्वीकार कर लिया। राजा साहब 40 रु महीना देते और संसार 50 रु महीने। 90 रु महीने की आमदनी मेरे रोम रोम में पुलकन के आनन्द की विभोरता उत्पन्न करती थी। पी-एच डी की ओर से मेरा ध्यान हटने लगा। साहित्यरत्न करने की तो कोई बात ही नहीं रही। उसको बरहज मेंही छोड़कर मैं काशी चला आया था।

हिन्दी दैनिक 'संसार' कार्यालय गायघाट पर स्थित था। लंका से रोज गायघाट जाता था। वहां से पैदल आकर राजकुमारों की सेवा में लग जाता था। अब राजभवन में यह स्थिति विचार का विषय बन गयी कि ये क्या पढ़ायेंगे लड़कों को? इनको तो रूपया कमाने की सूझी है। ये इसी चक्कर में दिन रात पड़े रहते हैं। संयोग से सलेमगढ़ के राजा साहब भी आ गये और उन्होंने मुझे बुलवाया। राजा साहब वास्तव में मुझे बहुत ही सज्जन, धीर, शान्त, गम्भीर और विचारवान व्यक्ति लगे। उन्होंने बड़े ही सम्मान और संयत भाव से मेरे समक्ष एक प्रस्ताव रखा कि आप आनन्देश्वर को ही पढ़ाएं। हम छोटे बच्चों के लिए एक दूसरा ट्यूटर नियुक्त कर देते हैं। आपका वेतन 40 रु प्रतिमाह से घटाकर 30 रु प्रतिमाह होगा।

वास्तव में राजा साहब की यह बहुत बड़ी उदारता थी। जिस बात पर मुझे सेवा से मुक्ति किया जा सकता था, उसी के हित मुझे मेरी आवश्यकता के अनुरूप और भी सुविधाजनक अवस्था में रखने की यह व्यवस्था थी। किन्तु वहां के नौकरों से प्रतिस्पर्द्धा की सृति से ही मेरा मनोबल टूट जाता था। मैंने राजा साहब से नम्रतापूर्वक कहा कि राजा साहब, यदि मेरा वेतन 40 रु से बढ़ाकर 50 रु भी कर दिया जाय तो भी अब मैं यहां नहीं रहूँगा। मेरा





नमस्कार स्वीकार करें। अब मैं चलता हूँ। मैंने अपना सारा समान समेट लिया। सड़क से रेक्सा वाले को बुला लाया। बंगले के दरवाजे पर मेरा रेक्सा जब पहुँचा तो राजा साहब ने मेरा हिसाब करके जो कुछ मुझे पाना था वह अपने नौकर भेज दिया और मैं अब पुनः सड़क पर आ गया।

बरहज के कुछ परिचित मित्र सड़क पर आते ही मुझसे मिले। अभिवादनोपरान्त ज्ञात हुआ कि ये लोग साहित्यरत्न की परीक्षा देने यहाँ आए हैं। टीचर्स ट्रेनिंग कालेज कमच्छा उस समय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं का केन्द्र था। उन मित्रों ने बतलाया कि वे मेरा भी प्रवेशपत्र लेते आए हैं। पं.सिंहासन त्रिपाठी ने इस आशा से प्रवेश पत्र दिया है कि सम्भव है मोती जी मिल जाएं कहीं और वह भी सम्भव है कि वे प्रवेश पत्र की प्रतीक्षा में भी हों। परिस्थित्यानुसार यह प्रवेश पत्र काम आ जायेगा। यह सब देख सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। साहित्यरत्न की परीक्षा की कल्पना को मैं बरहज में ही छोड़ आया था। इसीलिए उसकी कोई तैयारी नहीं की। बिना कुछ पढ़े क्या परीक्षा देना? मेरे मित्रों ने उस समय की मेरी परिस्थिति को प्रेम से सुना और कहा कि जब आप इस समय पुनः आवास रहित हैं तो हम लोगों के ही साथ कुछ दिन रह लीजिए। मुझे यह बात जंच गई और उन्हीं लोगों के साथ उनके निवास स्थान पर चला आया। परीक्षा की उनकी तैयारी देख-देख कर मेरा दिल कचोटने लगा। चार-पांच दिन अभी और थे परीक्षा में। मैं उनकी संगति में रहकर उनका पढ़ना सुन-सुनकर धीरे धीरे उत्साह में आ रहा था और दूसरे ही दिन मैंने निश्चय कर लिया कि मैं भी परीक्षा में बैठूँगा और अपनी अल्पज्ञता को परीक्षाकी कसौटी पर कसूँगा। शम्भुनाथ सिंह से भैंट मुलाकात होती ही रहती थी। उन्होंने कहा कि तुम जिद्दी हो और मूर्ख भी। परीक्षा शुल्क की रकम बेकार जायेगी। इसे अगले वर्ष के लिए सुरक्षित करा डालो और विधिवत पढ़कर कायदे से परीक्षा दो। उस समय साहित्यरत्न की परीक्षा एक वर्ष में पूर्ण होती थी। दो खण्डों में परीक्षा देने की व्यवस्था आगे चलकर बहुत वर्ष बाद हुई। मैंने शम्भुनाथ सिंह की बात पर जरा भी ध्यान नहीं दिया और परीक्षा में बैठने की तैयारी करने लगा। अध्ययन शुरू हो गया।

‘संसार’ कार्यालय ने एक भी दिन का अवकाश नहीं दिया। प्रातः 7 बजे से 10 बजे तक परीक्षा देता था और 12 बजे से 6 बजे तक सम्पादकीय विभाग में नियमित कार्य करता था। इस प्रकार मैंने साहित्यरत्न की परीक्षा दी और द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हो गया।

इस छोटी सी घटना को मैं बहुत महत्व देता हूँ। साहित्यरत्न की उपाधि की इसमें प्रधानता नहीं है। मुख्य बात यह है कि नियमित ढंग से अध्ययन की मुझे सुविधा कभी नहीं मिली। प्रत्येक छोटी बड़ी बात मेरे सामने संघर्ष की स्थिति में ही प्रस्तुत होती थी। जिस बात का संकल्प मैं कर लेता था उसको पूरा करने के लिए सच्ची भावना और गहरी लगन से प्रयत्न में





लग जाता था। यदि इस परीक्षा में मैं अनुत्तीर्ण भी हो जाता तो मुझे दुख नहीं होता क्योंकि मेरे समक्ष परीक्षा में उत्तीर्ण होने की कोई स्थिति नहीं थी। मेरे ही जैसों के लिए तो अनुत्तीर्ण शब्द बना है। लेकिन कविता की दीक्षा में अपरिमित शक्ति है। कविता से शक्ति लेकर मनुष्य जीवन और समाज में कल्याणकारी आदर्शों की स्थापना कर सकता है। व्यक्तिगत उपलब्धियां सर्वदा उसका अनुसरण करती हैं। 'देखकर जो विज्ञ बाधाओं को घबराते नहीं, चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देते बना' जैसी कविता की अनेक पंक्तियाँ गुरुमंत्र बनकर स्वयं चरित्र बल उत्पन्न करती थीं। किसी भी कार्य में मुझे किसी गैर से कभी सलाह लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी। मेरे भीतर और बाहर मेरा आदर्श कविता थी।

हिन्दी दैनिक 'संसार' के सम्पादकीय विभाग में अब मैं उन्मुक्त होकर कार्यरत हुआ। दारा नगर में पं. भोलानाथ तिवारी के मकान में एक कमरालेकर रहने लगा। शम्भुनाथ सिंह का नियमित साहचर्य प्राप्त ही था। काशी का साहित्यिक वातावरण भी अनुकूल था। काव्य रचना में आत्मा रमी हुई थी। पी-एच डी करने की लालसा पूर्ववत् सजीव और सशक्त थी। टीचर्स ट्रेनिंग कालेज के प्रमाण पत्र पी-एच डी के आगे फीके प्रतीत होते थे। फिर भी महाकवि पं. श्यामनारायण पाण्डेय की कृपा, आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी के आशीर्वाद से ट्रेनिंग के लिए मेरा चयन हो गया किन्तु यह उस समय हुआ जब मैं चेतगंज हवालात में बन्द था। मेरा भाग्य सितारा हमेशा गर्दिशों में ही मुस्कराता था। हवालात से सेन्ट्रल जेल में अनिश्चित काल के लिए भेज दिया गया। चला था डाक्ट्रेट का हौसला लेकर मगर टीचर्स ट्रेनिंग कालेज की डिग्री भी खटाई में पड़ गयी। सौभाग्य से जून के पहले दूसरे सप्ताह तक मैं जेल से छोड़ दिया गया और जुलाई में ट्रेनिंग कालेज में नाम लिखाने का मुझे अवसर मिल गया। अब मैं फिर युनिवर्सिटी का स्नातक बन गया। इस बार नाम लिखाने का खर्च घर से मिल गया। मैं ट्रेनिंग कालेज के हास्टल में एक कमरा लेकर रहने लगा। मेरे कमरे के साथ ही श्री भगवती सिंह का भी कमरा था। उन्होंने एमए नहीं किया था अभी तक। वे मेरे बी ए की कक्षा के सहपाठी थे। किशोरी लाल गुप्त भी मेरे सहयोगी थे। मोती सिंह भी मेरे साथ ही थे। कोटा के नागेन्द्र कुमार सक्सेना का कमरा भी मेरे कमरे की बगल में था। बरेली के निरंकार देव सेवक भी इसी बैच में थे। जितने संगी साथी थे सबके सब अल्हड़ और अध्ययनशील थे। सुप्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री श्री यच. वी. मलकानी प्राचार्य थे। पं. लालजी राम शुक्ल हम लोगों को मनोविज्ञान पढ़ाते थे। सुब्रह्मण्यम साहब हास्टल के वार्डेन थे। बहुत दिनों बाद मुझे फिर एक हरे भरे वातावरण में विचरण करने का अवसर मिला था। मैं बहुत प्रसन्न था। यह समय मेरे अध्ययन काल का स्वर्ण युग था। मैं काशी में ही नहीं एक यथेष्ट विस्तार में काशी





के बाहर भी लोकप्रिय हो गया था। प्रायः कवि सम्मेलनों के निमंत्रण मिलते रहते थे। मुझे 20 रु की एक छात्रवृत्ति भी मिल गयी थी। घर से भी कुछ पैसे कभी कभी मिल जाते थे। कवि सम्मेलनों से भी कुछ मदद मिल जाती थी। गुरुवर आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी का वरदहस्त मुझ पर रहा करता था। इसी वर्ष सन् 1943-44 में कालिदास ग्रन्थावली का वे सम्पादन कर रहे थे। मुझे उन्होंने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' एवं 'मालविकामिमित्र' का हिन्दी अनुवाद करने का आदेश दिया। यह कार्य कर लेने के पुरस्कारस्वरूप उन्होंने मुझे 100 रु भी दिये। इस प्रकार मेरी पूर्व परिचिता दीनता अब मेरे पास आने से घबराती थी। फिर भी मैं अभावों का राजा और भावों का भिखारी बना रहता था। विनयशीलता और दीनता मेरे घर की मालकिन बनकर सारा इन्तजाम करती रही। इनके अनुशासन में मुझे बहुत ही आनन्द मिला हुआ था। सर्वोपरि गुरुवर आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी के घर की छाया, अक्षयवट की छाया के समान सतत मेरी रक्षा करती थी। मैं फूला फूला इतराता फिरता था। सबका स्नेहभाजन जो था।

इस समय के एक-आध अविस्मरणीय प्रसंग हैं। अपनी निर्धनता के कारण मेस में भोजन न कर मैं स्वपाकी होना चाहता था जिसके लिए मलकानी साहब की स्वीकृति आवश्यक थी। मैं मलकानी साहब से इसके लिए मिला। उनको अपनी गाथा मैंने सुना डाली। सहानुभूति प्रकट करने एवं मुझे प्रोत्साहित करने के बदले मलकानी साहब मुझ पर बरस पड़े-'यह ट्रेनिंग कालेज है, अनाथालय नहीं है। जाओ यहां अलग से खाना बनाने की जगह नहीं है।' यही बात उन्होंने समझाकर कही होती तो मुझे दुख नहीं होता। किन्तु कुछ इस तरह कठोर होकर उपेक्षा की दृष्टि से उन्होंने यह बात कही कि मैं अपनी विवशता पर रो पड़ा। उलटे पाँव उनके आफिस से लौटा मगर दिमाग में प्रतिक्रिया की आँधी बह रही थी। मेरा मन विद्रोह कर उठा-'नहीं पढँगा मैं यहां। नहीं करनी है मुझे टीचरी। मलकानी साहब मुझे अनाथ कहते हैं, मेरे पिताजी और मेरी माँ अभी जीवित हैं। मेरे कुल की बड़ी शानदार परम्परा है। सम्मान पर मर मिट्ठा मेरा कुल धर्म है। मेरे पिता जी के सामने क्या है मलकानी साहब ? मुझे अनाथ समझते हैं इसलिए कि मैं गरीब हूँ और निर्धनता के कारण अपने हाथ से भोजन बनाना चाहता हूँ। मैं तत्काल गुरुवर आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी के पास पहुँचा। सारी बात मैं उनको सुना गया। भर्ये हुए स्वर से गिङ्गिङ्गाकर उनसे मैंने कहा कि पण्डित जी, मैं अब ट्रेनिंग कालेज में नहीं पढँगा। पण्डित जी ने मुझे बहुत समझाया। विविध भाँति आश्वस्त किया। मलकानी साहब की महानता और उनकी सदाशयता का सविस्तार वर्णन किया। उन्होंने यह भी कहा कि वे ऊपर से कठोर प्रतीत होते हैं किन्तु उनका हृदय बहुत ही कोमल एवं सरस है। अभी उनको तुम जानते नहीं हो इसलिए घबरा रहे हो। मैं उनसे





तुम्हारे सम्बन्ध में बात कर लूंगा। तुम जाकर मेस में ही भोजन करो। अलग से भोजन पकाने में बहुत सी दिक्कतें होंगी। वास्तव में इससे अध्ययन में बाधा होगी।

पण्डित जी ने अपने मधुरस्नेहपूर्ण वचनों से मेरे मन की व्यथादूरकर दी किन्तु मलकानी साहब का यह कहना कि यह अनाथालय नहीं है, कभी भूलता नहीं। वैसे तो यह दुनिया ही सरायखाना है। किसी का यहाँ कुछ भी नहीं है। किन्तु गाड़ी में पहले से बैठा व्यक्ति दूसरे यात्री को गाड़ी में बैठने से क्यों रोकता है? वह भी अगले स्टेशन पर उत्तर कर गाड़ी को जहाँ का तहाँ छोड़कर अपने घर चला जाता है। इस दुनिया में कौन सनाथ है? यह बड़े ही कष्ट की बात है कि एक जो स्वयं अनाथ हो, दूसरे को अनाथ कहे। मलकानी साहब वास्तव में महान थे। उनकी कृपा मुझ पर सदा रही। उनका पूरा परिवार मुझ पर स्नेह का भाव रखता था। छात्रवृत्ति मिलती ही थी। मेरे दिन बड़े मजे में बीतने लगे। कविताओं के कारण मैं अत्यधिक व्यस्त रहता था। मेरे कमरे में स्नानोपरान्त लुंगी लपेटे नंगे बदन गौर वर्ण के गोल-मटोल श्री भगवती सिंह खड़ाऊँ चटकाते हुए आ खड़े होते-कहिए मोती भाई, क्या लिख पढ़ रहे हैं? अरे, यह तो कविता है। हाँ जरा पढ़िए तो मैं भी सुनूँ। इस प्रकार भगवती सिंह जी काफी देर तक मेरी कविताओं में उलझे रहते थे और उनकी प्रशंसा करते थे। उस समय मुझे क्या पता था कि यही भगवती सिंह पी-एच.डी., डी लिट् करके किसी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष होंगे। मैं तो यही समझता था कि ये भी मुदर्रिस होंगे और हम भी। किन्तु जीवन का रंगमंच किस नाटक के रंगमंच से कम है? किशोरीलाल जी गुप्त, श्री मोती सिंह, श्री अखिलेश चन्द्र उपाध्याय सभी अपने अपने जीवन में उच्चातिउच्च पदों को सुशोभित करते रहे। जैसे जैसे परदे उठते गये दृश्य बदलते गये। मुझे भी उस समय क्या पता था कि अगले ही कुछ महीनों में भाग्य मेरे साथ कौन सी क्रीड़ा करने वाला है।

ट्रेनिंग कालेज के सत्रारम्भ का प्रथम दिन परिचय दिवस के रूप में मनाया जाता है। सभी स्नातक एक बड़े कमरे में एकत्र होते हैं। सम्पूर्ण अध्यापक मण्डल भी उपस्थित रहता है। प्रत्येक स्नातक का परस्पर परिचय कराया जाता है। कोई विशेष स्नातक अपना विशेष कार्यक्रम भी प्रस्तुत करता है। इस अवसर पर श्री निरंकारदेव सेवक के कविता पाठ ने सबका मन मोह लिया। उनकी कविता-

मधुर गीत मस्ती के मैं गा रहा हूँ,

किनारे किनारे चला जा रहा हूँ।

सबके हृदय में पैठ गयी। कविता प्रस्तुत करने की शैली, उनका मधुर स्वर और कविता की मार्मिक पंक्तियाँ सब बहुत आकर्षक थीं। सेवक जी का प्रभाव सबके हृदयपर अंकित हो गया।





उनके बाद मेरे नाम की घोषणा की गयी कि अब मोती बी.ए. अपनी कोई कविता प्रस्तुत करें। मुझे भी मंच पर उतरना पड़ा। सेवक जी धाकड़ मंचबाज थे और मैं मंच से घबराने वाला जीव था। पानी से भरे एक कड़ाहे में अगर कोई चीटा डाल दें तो वह हाथ-पांव मारकर किनारे लग ही जाता है और फिर धीरे धीरे उसके गीले नन्हे पंख सूख जाते हैं। वह पुनः स्वच्छन्द विचरने लगता है। मैंने अपनी सद्यःप्रणीत कविता—‘नम में बादल धिर धिर आते’ सुनाई। पावस की ऋतु में उपयुक्त वातावरण में मेरी इस कविता ने पर्याप्त रस वर्षा की। कमरे के भीतर पावस साक्षात उतर आया। मंत्रमुग्ध जैसे दीख रहे थे सभी कोई। गीत पूरा हो जाने पर भी ताली नहीं बजी। जब मैं मंच से उतरने लगा तो लोगों ने बड़े जोर से क्लैपिंग की। ट्रेनिंग कालेज में साल भर तक सोल्लास, सानन्द रहने के लिए यह एक ही कार्यक्रम काफी था।

मेरे भावी जीवन की सम्पूर्ण भूमिका ट्रेनिंग कालेज में बन रही थी। लेकिन इसकी किसी भी तैयारी का मुझे भान नहीं था। कविता का नशा दिन रात मुझ पर रहता था। गीत लिखता और मुक्त छन्द में बड़ी बड़ी लम्बी रचनाएं करता था। कवि-सम्मेलनों में मेरी मांग बढ़ती जा रही थी। पत्र-पत्रिकाओं में मेरी कविताएं साग्रह प्रकाशित होने लगी थीं। मुझे कलाकार, गीतकार भी बनना था। मुझे अध्यापक बनकर जीवन-यापन करना था। इसी आधार पर मेरे जीवन की रचना प्रवृत्त कर रही थी। किन्तु मैं यह भी सोचता था कि मैं डाक्ट्रेट तो करूंगा ही और किसी युनिवर्सिटी में इतिहास विभाग की सेवा करूंगा।

स्वास्थ्य और शरीर विज्ञान की कक्षा में मैं सबसे अन्तिम पंक्ति में एक कोने में सिर झुकाकर बैठता था। विषय अध्यापक कक्षा में छात्रों को अपना नोट लिखाते थे। उनकेनोट की छपी प्रति बाजार में बिकती थी। हम लोगों के पास वह पुस्तक थीं। इसलिए जो छात्र चाहता था लिखता था क्लास में उनका नोट और जो नहीं लिखना चाहता था वह चुपचाप सिर झुकाकर कुछ न कुछ कागज पेन्सिल के सहारे गोंजता रहता था। मैंने दो बड़ी कविताएं मुक्त छन्द में इसी कक्षा में लिखीं-

1. इतना सुन्दर गा लेते हो कैसे
खुले कण्ठ से ।
2. उड़ी उड़ी आँखें
मधु बोझिल पाँखें ।

सेठ आनन्दीलाल पोद्दार ने कलकत्ते में एक विराट अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का त्रिदिवसीय आयोजन इसी वर्ष किया। हिन्दी साहित्य के प्रतिभासम्पन्न कवि बड़ी संख्या में इस





समारोह में उपस्थित हुए थे। तीसरे दिन गुरुवर आचार्य पं.सीताराम चतुर्वेदी की देखरेख में काशी से हम लोग भी वहाँ पहुँचे जैसे शम्भुनाथ सिंह, निरंकार देव सेवक, बेधड़क बनारसी आदि। मैं भी इनके साथ था। उन दिनों कलकत्ते में भुखमरी थी। सड़कों पर क्षुधा पीड़ितों की लाशें दिखाई देती थीं। किसी प्रकार का समारोह कलकत्ते में ही नहीं देश में मानवता को एक चुनौती के समान था। मगर करने वाले अपना काम करते ही हैं। कवि सम्मेलन वास्तव में बड़ा ही भव्य था। इस कवि सम्मेलन से गोपाल सिंह 'नेपाली' की कीर्ति चतुर्दिक व्याप्त हो गयी। उनको बहुत सम्मान और अनेक स्वर्ण मेडल तथा प्रचुर दक्षिणा प्राप्त हुई। 'नीरज' को प्रथम प्रथम मैंने इसी कवि सम्मेलन में देखा। सामान्य युवक, कुर्ता पायजामा और सरल स्वभाव युक्त नीरज कवि सम्मेलन पर छा गये थे। इन दो कवियों की कलकत्ते में बड़ी धूम थी। इनका कार्यक्रम तीनों दिन हुआ। काशी का दल अन्तिम दिन के आयोजन में सम्मिलित हो सका था किन्तु सफलता इसमें सभी को मिली। सेवक जमे ही, शम्भुनाथ सिंह भी जमे। सबसे अधिक प्रभाव मेरी कविताओं का रहा। मेरी कविता थी- 1. मैं प्यार चाहता हूँ।

2. कोई तो मुझको प्यार करे।

मुझे भी स्वर्णपदक प्राप्त हुआ। स्थानीय हिन्दी दैनिक पत्रों में समाचार के साथ सम्पादकीय अग्रलेखों में किसी में मेरी जोरदार तारीफ और किसी में कटु आलोचना की गयी थी। आलोचना में यह लिखा गया था कि कलकत्ते की सड़कों पर जहाँ एक ओर लोग भूख से तड़प तड़प कर मरते हों वहाँ कवि प्यार और वासना का गीत गाता है। यह कितने खोभ की बात है? यह आलोचना वास्तव में सही है। इस प्रकार के आयोजन उपयुक्त नहीं हैं। वैसे मेरी यह यात्रा मेरी लोकप्रियता और पैसे की दृष्टि से पूर्ण सफल रही।

लोकसभा के सदस्य होने के पूर्व श्री सुधाकर पाण्डेय से काशी के किसी आयोजन में भेट हो गयी। अभिवादन की औपचारिकता के समय उन्होंने जब यह सूचना दी कि मैं आपका छात्र रह चुका हूँ तो मुझे आश्चर्य हुआ। पूछने पर ज्ञात हुआ कि टीचर्स ट्रेनिंग कालेज में छात्राध्यापक के रूप में उनको नवीं कक्षा में मैंने कुछ दिन जरूर पढ़ाया था। सुधाकर जी एम.पी होने पर और भी अधिक पसरे और फले फूले। मैंने एक पत्र लिखा उनको इस अवस्था में। उत्तर न मिलने के कारण मैं खिल्न नहीं हुआ क्योंकि व्यस्तता कितनी वाहियात होती है इसका खुद मुझे तजुरबा है। किन्तु तब भी यह घटना याद हो आती है। टीचर्स ट्रेनिंग कालेज के मेरे वे गौरवपूर्ण दिन आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो उठते हैं।

अंग्रेजी की कविताओं का हिन्दी में पदानुवाद करके जब मैं मूल के समानान्तर





अपना अनुवाद प्रस्तुत करता था तो छात्र मुश्किल हो जाया करते थे। पाठ्य-विषय के प्रति उनके मन में अनुराग उत्पन्न हो जाता था। अंग्रेजी की कविता के अनुवाद का मेरा प्रथम प्रयास था। यह एक लोरी थी। नन्हे को थपकी देकर गीत के स्वर ताल पर झुलाया जा रहा था, उसे सुलाया जा रहा था। अनुवाद का आरम्भ इस प्रकार था-

आँखों के तारे
प्राणों के प्यारे
चुप हो जा, सो जा——।

कक्षा में सख्त पाठ के उपरान्त छात्रों की आँखों में उनकी आत्मा का छलकता आनन्द मेरे जीवन की स्थायी अचल निधि है जिसके बल पर मैंने आगे चलकर शेक्सपीयर के सॉनेटों, राबर्ट ब्राउनिंग की कठिन साध्य कविता रबी-बेन एजरा, कॉलरिज के ऐन्सेट मेरिनर, जान ड्रिंकवाटर के नाटक अब्राहम लिंकन का (भोजपुरी में), हाईस्कूल पोयेट्री की सभी कविताओं, डी जी रासेटी के 'दी ब्ल्सेड डेमोजल' का अध्यापन काल में अनुवाद किया। अध्यापन के उपरान्त डी.जी. राजेटी की कविता 'दी ब्ल्सेड डेमोजल' का अनुवाद किया हिन्दी के गेय छन्द में।

इसी सिलसिले में पं रामअवधि द्विवेदी के निवास स्थान पर एम ए प्रथम वर्ष के स्नातक केशव चन्द्र मिश्र के संयोजकत्वमें एक कविगोष्ठी सम्पन्न हुई जिसमें बिहार के सुप्रसिद्ध प्रगतिशील कवि रामदयाल पाण्डेय भी सम्मिलित हुए थे। मैंने अपना यह अनुवाद सुनाकर सबको आह्लादित किया था। डा राजबली पाण्डेय और गोपाल जी त्रिपाठी इस गोष्ठी में सम्मिलित थे। उस समय तक द्विवेदी जी ने डाकट्रैट की उपाधि प्राप्त नहीं की थी किन्तु वह उनको मिलने ही वाली थी। टीचर्स ट्रेनिंग कालेज के इन सुनहरे दिनों को पंख लग गये थे। बड़ी तेज गति से वे उड़ते जा रहे थे अन्तरिक्ष में, मुझे अपने पंखों पर बिठाकर।

उपाधियों के संघर्ष की पूर्व स्थिति से यह स्थिति रंच मात्र भी भिन्न नहीं है। मैं कौन सी उपाधि प्राप्त कर रहा था और कौन सी छोड़ रहा था यह सब क्या मालूम ? आगे आने वाली घटनाएं इस रहस्य को स्वयं ही खोल देंगी। मैंने संघर्ष का एक नशा पी लिया था और यही नशा तरंगित हो उठा था।

घर की दशा पूर्ववत् विपन्न थी। गृह प्रपञ्च हमेशा धक्का देकर और ठेल ठालकर पुराने जर्जर इंजन की भाँति स्टार्ट कर दिया करता था। अब यह खुदाई इंजन खुदाई ताकत के ही सहारे चल सकता था। टीचर्स ट्रेनिंग कालेज में पढ़ते समय अवश्य कोई ईश्वरीय शक्ति मुझे पूर्ण और उत्साहित बनाये हुए थी। दशहरे की छुट्टियों में घर आया। भइया जी (चाचा जी)





हो जाता था। मैंने उनसे फिर पूछा कि अगर मैं काशी जाते ही आपके पास बीस रुपया मनीआर्डर से भेज दूँ तो क्या इस खेत का खारिज दाखिल आप करा लेंगे? उन्होंने कहा-जरूर ! मैंने काशी जाकर अपनी मिलने वाली छात्रावृत्ति भइया जी के पास भेज दी। इस खेत का खारिज दाखिल हो गया। उस पर अब हम लोगों का कब्जा है। चकबन्दी में अन्य टुकड़ों के साथ वह भी शामिल है। ऐसा था उस समय हमारा घर। उसके पास हमारे लिए सिवा आशीर्वाद के कुछ भी नहीं था। अपने घर से किसको प्रेम नहीं होता है ? माँ की तरह सबको समेट कर रखने वाली अपनी गोदी से जो कभी उतारती नहीं, जर्जर, ढही पड़ी, नुची-चुथी माटी की दीवाल जिसके सिर पर उखड़े उखड़े, टूटे-फूटे खपरैलों की छांह थी, पफूलती हुई नसों की तरह जिसके शहतीर बरंगे और कड़ियां थीं, प्यार के लिए व्याकुल तड़पती खुली बाहों के समान जिसके जर्जर दरवाजे थे, जो अपने दराजों की आँखों से अपने प्रिय के लिए अधीरता से प्रतीक्षारत रहा करती थी वह प्यार का घर था। वही तो हमारी माँ है। उसी की ममता से तो हमको जन्म देने वाली माँ की ममता बंधी है। उसी के लिए तो हम जीते हैं और उसी के लिए मरने में हमारे जीवन की सार्थकता है। इस तथ्य का ज्ञान भी अनुभवजन्य ज्ञान है या अनुभव के पूर्व का ? हँसी आती है यह सोचकर। क्यों माँ और घर से ही यह ममता की भावना आबद्ध है ? अगर इस घर से बड़ा कोई और घर न होता तो इस ममता का व्यापार कैसे चलता ? कहां से उत्पन्न होती है यह ममता ? किस सूत्र में बंधा है हमारा जीवन। हम अपने घर कब पहुँचेंगे ? माँ की सुखद गोद हमें कब नसीब होगी ? क्या उस असीम ममता को हम अपने घर-परिवार की सीमित ममता में देखते हैं। अथवा घर परिवार की इसी सीमित ममता में हमें उस असीम ममता का बोध होता है ? अपने प्यारे नन्हे से घर के सामने मौन खड़े होकर हम इन विचारों में डूबे हुवे इस प्रश्न का उत्तर चाहते हैं तो वे ही दीवालें, वे ही खपरैल, ये ही शहतीर बरंगे और कड़ियां, वे ही दरवाजे, वे ही दराज, इसके भीतर बैठी हुई हमारी वृद्धा माँ, सभी एक नजर उठाकर हमको स्लेह से देख लेते हैं और हम अपने प्रश्न का उत्तर पाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। टीचर्स ट्रेनिंग कालेज की यह घटना नगण्य है किन्तु इसके आड़ में जीवन के गहरे तथ्य छिपे हैं।

टीचर्स ट्रेनिंग कालेज का मेरा एक वर्ष का जीवन मेरी जीवन गाथा का सुनहरा पृष्ठ है। इस जीवन में मेरी कविता बड़े मौज से जी रही थी। वह उछलती, कूदती, उड़ती, तैरती, दौड़ती, आराम करती रही। इसी में यदि वह रह गयी होती तो कितना अच्छा हुआ होता। मैं किसी विद्यालय में अध्यापक बन गया होता। घर गृहस्थी के सम्बालने में अपने भइया जी का हाथ मजबूत किए होता।

मगर यह सब कुछ न हुआ। मेरी ट्रेनिंग की उपाधि भी मेरे लिए बेकार हो गई।





बी.ए. की उपाधि मेहनत से प्राप्त की गयी सभी उपाधियों को दबोच कर उनके ऊपर बैठ गयी। अभी प्रेक्टिकल परीक्षा नहीं हो पाई थी। जनवरी फरवरी का महीना था। सन् 1944 का आरम्भ हो गया था। पंचोली आर्ट पिक्चर्स लाहौर के निर्देशक श्री रवीन्द्र दवे अपने सहायक निर्देशक श्री एस.रणजीत (सरदार जी) के साथ कलाकारों की खोज में काशी आए थे। वे कलाकार होटल में रुके थे। आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी के वे परम भक्त हो गये थे। पंडित जी की अध्यक्षता में भाई श्री दिलीप नारायण सिंह की कोठी में प्रसाद परिषद के तत्वावधान में एक काव्य गोष्ठी का आयोजन हुआ जिसमें फ़िल्म निर्देशकों की दृष्टि मुझपर पड़ी। मैंने अपनी कविता 'ख़प भार से लदी तूं चली', इस गोष्ठी में सुनाई थी। सभी बहुत प्रभावित हुए थे। श्री रवीन्द्र दवे और श्री एस रणजीत ने पंडित जी से मेरे बारे में बातचीत की। वे लोग मुझे अपने साथ लाहौर ले जाना चाहते थे मगर ट्रेनिंग कालेज में अभी मेरी पढ़ाई चल रही थी। पण्डित जी ने उन्हें वचन दिया कि परीक्षोपरान्त मैं मोती को तुम्हारे पास लाहौर भेज दूँगा। उक्त निर्देशकों ने कहा कि अप्रैल के अन्त अथवा मई के आरम्भ में हम लोग मोती जी को भेजने के लिए आपके पास टेलीग्राम देंगे।

इस प्रकार उपाधियों का मेरा संघर्ष समाप्त हुआ। उपाधियां प्राप्त तो हुई, होती गई, मगर वे मेरे किस काम की? 'शरबते बस्त मिला हमको तो सिरका होकर'। जब मुझे फ़िल्मी कलाकार ही होना था तो क्या बी.ए. और क्या एम ए। फिर बी.टी. की डिग्री तो और भी बेकार थी। उन्हीं सब कारणों से हमारे विद्यालय के प्राचार्य श्री मलकानी साहब ने बहुत दुखी होकर कहा कि हमारी एक डिग्री बी.टी.की बेकार हो गयी। जब इनको कलाकार ही होना था तो टीचर्स ट्रेनिंग कालेज की यह डिग्री किसी दूसरे जरूरतमन्द को मिल जानी चाहिए थी। हम तो अपने संघर्ष की तीव्रता में थे। नशे में थे। कोई मुझे चला रहा था और मैं आँख मूदे चला जा रहा था। कहां जा रहा हूँ, जो लिए जा रहा था वही जाने। परीक्षायें समाप्त कर मैं लाहौर पहुँच गया मई सन् 1944 में। ट्रेनिंग का प्रमाण पत्र और परीक्षाफल मेरे पास पंचोली आर्ट पिक्चर्स लाहौर के पते पर भेज दिया गया था विद्यालय की ओर से। थियरी और प्रेक्टिकल दोनों में मैं द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण था।